हमारी रहनी

प्रकाशक : श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा

हमारी रहनी

लेखक

श्री राजन स्वामी

प्रकाशक

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ

नकुड़ रोड, सरसावा, सहारनपुर, उ.प्र.

www.spjin.org

सर्वाधिकार सुरक्षित

© २००६, श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रस्ट

पी.डी.एफ. संस्करण – २०१८

विषय सूची

1	रहनी क्या है?	6
2	सामाजिक रहनी	20
3	धार्मिक रहनी	90
4	आध्यात्मिक रहनी	147
5	प्रेरणादायी प्रसंग	228
6	अमृत–पथ	311
7	रहनी का महत्व	372

भूमिका

प्रत्येक युग में श्रेष्ठ आचरण का महत्व रहा है। नीतिशास्त्र का कथन है कि "आचार हीनं न पुनन्ति वेदाः" अर्थात् आचरण से हीन व्यक्ति को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते हैं। किसी भी महापुरुष की महानता उसके आचरण से ही आँकी जाती है। कोई भी समाज या राष्ट्र श्रेष्ठ आचरण से रहित हो जाने पर विनाश को प्राप्त हो जाता है।

धर्मग्रन्थों की दृष्टि में सुन्दरसाथ का समाज परमहंस ब्रह्ममुनियों का समाज कहा जाता है। जो व्यक्ति जितने ही उच्च शोभायुक्त पद पर विराजमान हो, उससे उतने ही श्रेष्ठ आचरण (रहनी) की अपेक्षा की जाती है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए "हमारी रहनी" नामक इस ग्रन्थ की रचना अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी एवं सद्गुरु महाराज

श्री रामरतन दास जी की कृपा दृष्टि से की गयी है। इस ग्रन्थ में श्रीमुखवाणी, वेद, उपनिषद्, दर्शन, तथा बौद्ध धर्मग्रन्थ "धम्मपद" की सहायता ली गयी है। आशा है यह ग्रन्थ सुन्दरसाथ के लिये रुचिकर होगा। इसी भावना के साथ सबके कर कमलों में यह ग्रन्थ समर्पित है। जाने-अनजाने होने वाली त्रुटियों को क्षमा करने एवं सूचित करने का कष्ट करें।

आपकी चरण-रज

राजन स्वामी

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ

सरसावा

प्रथम किरण

रहनी क्या है?

अपने आचरण की श्रेष्ठता के कारण ही मानव योनि सबमें श्रेष्ठ मानी जाती है। स्वादिष्ट आहार, अच्छी नींद, और भय से युक्त तो सभी प्राणी होते हैं, किन्तु मनुष्य की विशेषता अपने उज्ज्वल चरित्र के कारण ही होती है। रहनी चरित्र का ही एक विस्तृत रूप है। चरित्र का सम्बन्ध मुख्यतः सामाजिक एवं धार्मिक आचरण की सत्यता से लिया जाता है, लेकिन श्रीमुखवाणी में "रहनी" शब्द से तात्पर्य सामाजिक, धार्मिक, एवं आध्यात्मिक (आत्मा एवं परब्रह्म सम्बन्धी) चरित्र से है।

चरित्र की कीमत क्या है? इसके सम्बन्ध में अंग्रेजी में एक कहावत प्रसिद्ध है कि यदि धन चला गया तो कुछ

नहीं गया, स्वास्थ्य चला गया तो कुछ गया, किन्तु यदि चरित्र चला गया, तो सब कुछ ही चला गया।

If wealth is gone nothing is gone, health is gone something is gone, but if character is gone everything is gone.

रहनी ही हमारे मानव तन का आभूषण है। हीरे-मोतियों के आभूषण तो नष्ट हो जाते हैं और उनका प्रभाव भी केवल थोड़े समय के लिए ही होता है, किन्तु रहनी मानव का वह आभूषण है, जिसके कारण शरीर के नष्ट हो जाने के बाद भी युगों-युगों तक दुनिया उसके यश का गुणगान करती रहती है। बिना रहनी के न तो इस संसार में कोई सुखी रह सकता है और न ही जीव को जन्म-मरण के चक्र से छुड़ाकर अखण्ड मुक्ति पा सकता है। वास्तव में बिना श्रेष्ठ रहनी के मानव पशु के

समान ही है।

धर्मग्रन्थों एवं श्रीमुखवाणी से रहनी का ज्ञान प्राप्त करके भी यदि हम उसे व्यवहार में नहीं लाते हैं और केवल मुख से रहनी की ऊँची-ऊँची बातें ही करते रहें, तो इससे हमारी आत्मा कभी भी धनी का न तो सुख ले सकती है और न इस दुनिया में शान्ति ही पा सकती है। कहनी का सम्बन्ध केवल शरीर तक ही सीमित रहता है और रहनी आत्मा को धनी के चरणों का सुख देती है।

कदी केहेनी कही मुख से, बिन रहनी न होवे काम।
रेहेनी रूह पोहोंचावहीं, कहनी लग रही चाम।।

छोटा कयामतनामा १/५५

जब हमारे दिल में एकमात्र पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द के सिवाय अन्य कोई भी दुनिया की चीज न हो, तभी हम

वास्तविक रहनी पर चलने वाले माने जायेंगे। जब तक हमारे दिल में इस चौदह लोक की किसी भी चीज के प्रति अनुचित आकर्षण है, तब तक हम रहनी की कसौटी पर खरा नहीं उतर सकते।

अब समया आया रेहेनीय का, रूह फैल को चाहे।
जो होवे असल अर्स की, सो फैल ले हाल देखाए।।

खिलवत ५/५

अब रहनी का समय आ गया है। अब मेरी आत्मा कहनी (कथनी) छोड़कर रहनी के अनुसार आचरण करना चाहती है। जो निश्चित रूप से परमधाम की आत्मा होगी, वह करनी (आचरण) करके पूर्ण रहनी में आ जायेगी।

कहनी कही सब रात में, आया फैल हाल का रोज।
हक अर्स नजर में लेय के, उड़ाए देओ दुनी बोझ।।

खिलवत ५/६

माया की फरामोशी होने से अज्ञानता की स्थिति में ही कथनी कही जाती है। अब जाग्रत बुद्धि के तारतम ज्ञान से उजाला (सवेरा) हो जाने से करनी और रहनी का समय आ गया है। अब इस दुनिया के प्रपञ्चों को छोड़कर अपनी आत्मा की नजरों में एकमात्र धाम धनी को ही बसाना है, तभी हम रहनी की शुद्ध स्थिति में पहुँच सकेंगे।

जब दो हैं तो कहनी और एक हैं तो रहनी, अर्थात् जब हमारे दिल में इस दुनिया की (तथा मेरा) मैं खुदी (स्वयं को कुछ मानना) तथा माया के सुख की चाहना

है, तब तक हम कभी भी रहनी की स्थिति में नहीं आ सकते हैं। वह केवल हमारी वाणी का ही विषय रह जाती है। जब हमारे दिल से ये दोनों चीजें निकल जायेंगी, तभी हमारी रहनी की शुद्ध अवस्था होगी और उस समय हमारे दिल में केवल धनी के चरण होंगे।

सर्वगुण सम्पन्न पूर्णातिपूर्ण तो एकमात्र पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द श्री राज जी हैं। इस कालमाया के संसार में हमारे गुण, अंग, इन्द्रिय सभी माया के हैं। अतः बहुत प्रयास करने के बाद भी माया के अन्दर भूलें हो जाना स्वाभाविक है। यद्यपि हमारा यह पूर्ण प्रयास होना चाहिए कि हमसे रहनी सम्बन्धी कोई भी भूल न होने पाये, रहनी की बहुत ऊँची अवस्था में पहुँच जाने पर भी कभी उस पर अभिमान नहीं करना चाहिए। हमारा दिल उस सागर के समान अथाह गहरा होना चाहिए, जिसमें

हजारों–लाखों गन्दे नाले गिरते रहते हैं किन्तु सागर के जल में कोई भी विकार नहीं पैदा होता, बल्कि वह सबका शरणदायक बना रहता है। अपने सम्पर्क में आने वाले पापी से पापी व्यक्ति से भी घृणा नहीं करनी चाहिए, बल्कि उसे स्नेह देकर उसके अवगुणों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। इस सम्बन्ध में महापुरुषों का कहना है कि पाप से घृणा करो, पापी से नहीं। जो आज पाप कर रहा है, सम्भव है कि वही व्यक्ति अपने बुरे कर्मों को छोड़कर महान बन जाये।

सूर्य उगता है तो अन्धेरा स्वतः भाग जाता है। जब हमारी रहनी स्वयं में एक आदर्श बन जायेगी, तो संसार बिना उपदेश दिये ही ग्रहण करने के लिये तैयार रहेगा। हरीश्चन्द्र जैसे सत्यवादी का मन में विचार आते ही हमारे अन्दर भी वैसा ही सत्यवादी बनने की प्रेरणा अवश्य पैदा

होती है, भले ही हमारी मानसिक कमजोरियाँ वैसा न बनने दें। हमारे मन में ही यह सपने का संसार खड़ा है। यदि हम अपने मन को जीत लें, तो सारा संसार हमारे वश में रहेगा। हमें इस संसार में जो भी असफलताएँ , दुःख, अपमान मिलता है, उसके मूल में हमारे अन्दर के विकार ही होते हैं, इसलिए कहा गया है–

मन के हारे हारिए, मन के जीते जीत।
मन ही देवे सत साहेबी, मन ही करे फजीत।।

सनंध २५/२६

जलता हुआ दीपक ही दूसरे न जले हुए दीपक को जला सकता है। जब हम स्वयं रहनी की कसौटी पर खरे उतरेंगे, तभी हमारे वचनों का दूसरों पर प्रभाव पड़ेगा। किन्तु हमारी रहनी तभी साफ सुथरी मानी जायेगी, जब

हमारे दिल में एक धाम धनी के अतिरिक्त इस माया की कोई भी चीज न बसी हो।

सोई मोमिन जानियो, जो उड़ावे चौदे तबक।
एक अर्स के साहेब बिना, और करे सब तरक।।

सिनगार १/३०

आज दिन तक इस दुनिया के लोगों को परब्रह्म के धाम, स्वरूप, और लीला का पता नहीं था। श्रीमुखवाणी कुलजम स्वरूप द्वारा धाम धनी, अपने निज स्वरूप, तथा अखण्ड परमधाम की पहचान हो जाने के बाद भी यदि हम रात (अज्ञानता में भटकने) की तरह केवल कहते ही रहें, तो इससे कुछ भी लाभ नहीं होगा।

केहेनी सुननी गई रात में, आया रेहेनी का दिन।
बिन रेहेनी केहेनी कछुए नहीं, होए जाहेर बका अर्स तन।।

छोटा कयामतनामा १/५६

ब्रह्मसृष्टियों की रहनी इस दुनिया के लोगों से अलग ही होती है, क्योंकि जहाँ दुनिया के जीवों की उत्पत्ति अन्धेरे (निराकार) से होती है, वहीं परमधाम की आत्माएँ साक्षात् पूर्ण ब्रह्म के नूरमयी तन होती हैं।

अपनी जुदाई दुनी से, किया चाहिए जहूर।
दोऊ एक राह क्यों चलें, वह अंधेरी एह नूर।।

छोटा कयामतनामा १/११२

धाम धनी श्री प्राणनाथ जी ने अपनी वाणी में हमें सचेत किया है कि इस दुनिया के प्रति तुम अन्धे, गूंगे, और बहरे बन जाओ, अर्थात् यदि कोई कुछ भी करता है तो उसके प्रति ध्यान न दो। यदि कोई तुम्हारी प्रशंसा या बुराई भी करता है तो तुम एक भी शब्द न बोलो, और न

किसी की बुराई या अपनी प्रशंसा सुनकर खुश होओ, बल्कि अपने हृदय में मूल स्वरूप श्री राजश्यामा जी तथा पच्चीस पक्षों को बसाकर धनी के प्रेम में कुर्बान हो जाओ।

श्री महामति कहे पीछे न देखिए, नहीं किसी की परवाह।
एक धाम हिरदे में लेय के, उड़ाय दे अरवाह।।

किरंतन ८७/१३

यह शरीर, धन-दौलत सब कुछ काल के अधीन है, किन्तु शुभ कर्म और ऊँची रहनी का फल पल-पल हमारे साथ रहता है। बड़े-बड़े धर्मात्मा महापुरुषों के शरीर तो नष्ट हो गये हैं, किन्तु उनकी उज्ज्वल रहनी के कारण ही सारा संसार उनको याद करता है। संसार के झूठे सुखों के भोग में लिप्त होने से न तो कोई आज तक महान बना है न कोई बन सकेगा, बल्कि स्वेच्छा से

इनका त्याग करने वाला ही महान बनता है। सेठ लक्ष्मण दास को यदि "महामति" की शोभा मिली, तो उनके सर्वस्व त्याग, अटल ईमान, एवं सच्चाई के कारण। इन्हीं गुणों ने छत्रसाल जी को "महाराजा छत्रसाल" और "अमीरुल मोमिन" की भी शोभा दिलवायी। सोने में सुगन्धि की तरह महान रहनी वाले होते हुए भी श्री देवकरण जी ने सुन्दरसाथ के बीच झाड़ू लगाने जैसी छोटी से छोटी सेवा करने में भी कभी संकोच नहीं किया। यह है ब्रह्मसृष्टियों की रहनी, जिस पर दुनिया के जीव अच्छी तरह चल नहीं सकते।

मानव तन धारण करने के बाद भी जिनके पास विद्या, तप, दान, ज्ञान, शील, गुण, और धर्म नहीं है, वे इस पृथ्वी पर पूँछ और सींग से रहित हिरण के समान विचरण करते हैं।

येषां न विद्या न तपो न दानं,
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्य लोके भुवि भार भूता,
मनुष्य रूपेण मृगाः चरन्ति।।

रहनी के बिना कोई मानव अपने को कभी ऊपर उठा ही नहीं सकता। इस सम्बन्ध में बाइबल कहती है–

हजार अधर्मी पुत्रों की अपेक्षा एक भक्त पुत्र अच्छा है। अधर्मी पुत्रों की अपेक्षा निस्संतान मरना अच्छा है।।

प्रवक्ता ग्रन्थ १६/३,४

Do not trust in their survival, or rely on their numbers, for one can be better than a thousand. To die childless is better than to have ungodly children.

Proverbs 10/3,4

अतः रहनी के बिना हमारी आध्यात्मिक मन्जिल अधूरी ही रह जायेगी।

यह पहली किरण सम्पूर्ण हुई।

द्वितीय किरण

सामाजिक रहनी

किसी भी मनीषी का कार्यक्षेत्र समाज ही होता है। वही समाज समुन्नत होता है, जो धर्म के शाश्वत सत्य को अंगीकार करता है। यदि समाज का प्रत्येक व्यक्ति केवल अपना सुधार कर ले, तो सारा समाज सुधर जाता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति समाज के प्रति अपने धार्मिक उत्तरदायित्व को पूरा करे। समाज के प्रति हमारा आचरण कैसा होना चाहिए, इस सम्बन्ध में मूल बिन्दुओं पर प्रकाश डाला जा रहा है–

धर्मग्रन्थों का कथन है कि "आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत", अर्थात् दूसरों से हम वैसा ही व्यवहार करें जैसा हम उनसे चाहते हैं। यदि हम किसी से

स्नेह एवं सहानुभूति की अपेक्षा करते हैं, तो हमें भी उनसे सर्वप्रथम यही व्यवहार करना पड़ेगा। "दिल अपना दे उनका लीजिए, इन विध हक चरणों पहुँचाए।" गीता का कथन है कि "आत्मवत् सर्व भूतेषु यः पश्यति स पण्डितः", अर्थात् जो अपने ही समान सभी प्राणियों को देखता है, वही पण्डित है।

साफ दिल सोहागनी, कबहूं न दुखावे किन।

कलस हिंदुस्तानी ११/७

परमधाम की ब्रह्मसृष्टि मन, वाणी, एवं कर्म से कभी भी किसी का दिल नहीं दुखाती है, क्योंकि उसे इस बात का पूर्णरूपेण अहसास होता है कि सबके अन्दर एक भावनाशील चैतन्य है।

बच्चों का निश्छल प्रेम पाने के लिए वैसा ही बनना

पड़ेगा। किसी के हृदय–सिंहासन पर विराजमान होने के लिए निष्कपट प्रेम की माधुर्यता से अपने हृदय को लबालब भरना पड़ेगा। सुन्दरसाथ से तो केवल यही आशा की जाती है कि वे श्रीमुखवाणी की इस कसौटी पर अपने को खरा सिद्ध करें–

मीठी जुबां मीठे वचन, मीठा हक मीठा रूहों प्यार।
मीठी रूह पावे मीठे अर्स की, जो मीठा करे विचार।।

सिनगार १६/२७

सम्पूर्ण प्राणिमात्र के लिए मैत्री एवं कल्याण की भावना–

भारतीय संस्कृति एक स्वर से यह घोषणा करती है कि, यह अपना है तथा यह दूसरों का है, इस प्रकार की सोच तो संकुचित हृदय वालों की है, उदार हृदय वालों

के लिए तो सम्पूर्ण पृथ्वी ही अपना परिवार है। इसी प्रकार वेद में कहा गया है कि मैं संसार के सभी प्राणियों को मित्र की दृष्टि से ही देखूँ। तुम मुझे मित्र की दृष्टि से देखो।

अयं निजः परोवेति गणना लघु चेतसाम्।
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।
मित्रस्य चक्षुसा अहं सवार्णि भूतानि समीक्षे। यजुर्वेद
मित्रस्य मा चक्षुषेक्षध्वम्। यजुर्वेद ५/३४

न तो मैं राज्य की कामना करता हूँ, न स्वर्ग की, और न ही मोक्ष की। मैं तो एकमात्र दुःखों से पीड़ित संसार के सभी प्राणियों के दुःखों के नाश की ही कामना करता हूँ। इस संसार में सभी सुखी हों। सभी निरोग हों। सभी एक-दूसरे का कल्याण चाहें। कोई भी कहीं भी

दुःखी न हो।

> न तु कामये अहं राज्यं न स्वर्ग न अपनुर्भवम्।
>
> कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामर्ति नाशनम्।।
>
> सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
>
> सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुख भागभवेत्।।

अथर्ववेद में कहा गया है कि संसार में न तो कोई भी भूखा रहे और न कोई प्यासा रहे।

> मा क्षुधन्मा तृषत्। अथर्ववेद २/२९/४

यदि संसार के धर्मग्रन्थों में इतनी ऊँची बातें कही गयी हैं, तो ब्रह्मवाणी के चिन्तन में खोये रहने वाले सुन्दरसाथ से तो यही आशा की जा सकती है कि वे आपस में प्रेम भावना से रहें। "आतम सहुनी एकज दीसे,

जुजवी ते दीसे देह" (रास ४/६) अर्थात् सबके शरीर भले ही अलग-अलग दिखायी पड़ रहे हों, लेकिन सबके तनों में तो परमधाम का ही अँकुर है।

सुन्दरसाथ में वर्गवाद, प्रान्तवाद, क्षेत्रवाद, धनी-गरीब, तथा रंग-रूप के आधार पर भेदभाव करना अक्षम्य अपराध है। इस दुनिया की सभी जातियाँ कर्मानुसार हैं, जन्म के आधार पर जातियों का निर्धारण करना मानवता के प्रति अत्याचार है। धाम धनी की वाणी तो भक्त चण्डाल को एक कर्मकाण्डी ब्राह्मण से अधिक श्रेष्ठ कहती है, क्योंकि उनमें आत्मिक दृष्टि से कोई भी भेद नहीं होता है-

चंडाल हिरदे निरमल, खेले संग भगवान।
देखलावे नहीं काहू को, गोप राखे नाम।।

विप्र भेख बाहेर दृष्टी, खट करम पाले वेद।

स्याम खिन सुपने नहीं, जाने नहीं ब्रह्म भेद।।

अब कहो काके छुए, अंग लागे छोत।

अधम तम विप्र अंगे, चंडाल अंग उद्योत।।

कलस हिंदुस्तानी १६/१६,१८,२०

गीता का भी कथन है कि चारों वर्ण गुण, कर्म, और स्वभाव के अनुसार बनाए हैं। जन्म से तो सभी शुद्र (अज्ञानी) ही पैदा होते हैं। उच्च संस्कारों के ग्रहण के पश्चात ही किसी की द्विज (ज्ञान से युक्त) संज्ञा होती है।

चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः। गीता ४/१३

जन्मना जायते शुद्रो संस्कारात् द्विजोच्यते। गीता

जात एक खसम की, और न कोई जात।

एक खसम एक दुनियां, और उड़ गयी दूजी बात।।

सनंध ३६/१७

परमधाम के सुन्दरसाथ की एक ही जाति है– आत्मा। यहाँ की इर्ष्या–द्वेष से भरपूर जातियों से कोई भी लेना–देना नहीं है। सभी सुन्दरसाथ से यही आशा की जाती है कि वे वाहेदत के प्रेम की कुछ झलक यहाँ भी दिखायें।

हक जात वाहेदत जो, सो छोड़े ना एक दम।

प्यार करें माहों मांहे, वास्ते प्यार खसम।।

सिनगार १९/५४

यदि धाम धनी का प्रेम पाना है, तो सुन्दरसाथ को परमधाम की मूल वाहेदत के सम्बन्ध को ध्यान में रखते

हुए समता के सिद्धान्त को अपनाना पड़ेगा एवं प्रेम की भाषा एवं व्यवहार को चरितार्थ करना पड़ेगा।

सम्यक् वाक् (पूर्ण शुद्ध वाणी)–

शुद्ध, प्रिय, और हितकारी वाणी से ही इस मानव तन की शोभा है। गीता में कहा गया है कि हमें हमेशा ऐसी वाणी बोलनी चाहिए, जिसको सुनने पर किसी के मन में कोई पीड़ा न हो; वह सत्य हो, प्रिय हो, तथा हितकारी भी हो।

अनुद्वेगकरं सत्यं प्रियं हितं च। गीता १७/५

सत्य बोलना चाहिए, प्रिय बोलना चाहिए, किन्तु सत्य और अप्रिय लगने वाला वचन नहीं बोलना चाहिए। इसके साथ प्रिय और असत्य भी नहीं बोलना चाहिए।

यह शाश्वत धर्म है।

सत्यं ब्रुयात् प्रियं ब्रुयात् न ब्रुयात् सत्यमप्रियम्।

प्रियं च नानृतं ब्रुयात् एष धर्मः सनातनः।।

वाणी ही महानता का परिचय देती है। जो व्यक्ति जितना ही महान होता है, उसकी वाणी भी उतनी ही शिष्ट, शालीन, और सत्य तथा मधुरता से भरपूर होती है।

जाको नामै रसना, होसी कैसी मीठी हक।

जिनकी जैसी बुजरकी, जुबां होत है तिन माफक।।

सिनगार १६/१

इस कथन से यह स्पष्ट है कि अक्षरातीत से अधिक मीठा बोलने वाला इस संसार में या कहीं भी कोई भी

नहीं है। धाम धनी को यह सहन नहीं है कि कोई भी किसी को किसी भी कीमत पर कटु वाणी बोले। वे कहते हैं–

ए हम सहयो न जावहीं, जो साथ में कहे कोई कटुक वचन।

किरंतन ८९/१३

वेद का कथन है कि मैं मधु के समान मीठी वाणी बोलूँ और मेरा हृदय भी मधु के समान मधुर हो जाये। मैं मधु के समान मीठी वाणी बोलूँ।

वाचा वदामि मधुमत् भूयासम में मधु सदृशः। अथर्ववेद

मधुमती वाचमुदेयम्। अथर्ववेद १६/२/२

महाभारत में वाणी के सम्बन्ध में कहा गया है कि व्यर्थ बोलने की अपेक्षा मौन रहना अच्छा है। यह वाणी की प्रथम विशेषता है। सत्य बोलना वाणी की दूसरी

विशेषता है। प्रिय बोलना वाणी की तीसरी विशेषता है, तथा धर्म के अनुकूल बोलना वाणी की चौथी विशेषता है।

> अव्याहृतं व्याहृताच्छेयं आहुः सत्यं वदेद् व्याहृत तद् द्वितीयम्। वदेद् व्याहृतं तत् तृतीयं प्रियं धर्म वदेद् व्याहृतं तच्चतुर्थम्।।
>
> महाभारत शान्ति पर्व २९९/३८

वचन रूपी बाण जब मुख से निकलते हैं, तब उनके द्वारा बींधा गया मनुष्य दिन रात शोक में डूबा रहता है, क्योंकि वे दूसरों के मर्म पर अघात करते हैं इसलिये विद्वान पुरुष को किसी के ऊपर वाणी रूपी बाण का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

जो दूसरों द्वारा अपने लिए कड़वी बात कहे जाने पर भी

उसके प्रति कठोर या प्रिय कुछ भी नहीं कहता, तथा किसी के द्वारा चोट खाकर भी धैर्य के कारण बदले में न तो मारने वाले को मारता है और न उसकी बुराई ही चाहता है, उस महात्मा से मिलने के लिए देवता भी सदा लालायित रहते हैं।

वाक्सायका वदनानिष्पतन्ति, यैराहतः शोचति रात्र्यहानि। परस्य नामर्मसु ते पतन्ति तान् पण्डितो नाव सृजेत् परे षु।।

योनात्युक्तः प्राह रुक्षं प्रियं वा यो वा हतो न प्रतिहन्ति धैर्यात्। पापं च यो नेच्छति तस्य हन्तुस्तस्येह देवाः स्पृहयन्ति नित्यम्।।

महाभारत शाान्ति पर्व २९९/९,१७

ब्रह्मज्ञान के साथ–साथ जिनके हृदय में प्रेम भरी मिठास की वाणी होती है, उनसे स्वप्न में भी अलगाव नहीं रखना चाहिए क्योंकि उनके दर्शन मात्र से ही नेत्र शीतल हो जाते हैं–

जेणे दरसने नेत्र ठरे, अने वचन कहे ठरे अंग।

अनेक विघन जो उपजे, पण मुकिए नहीं साध संग।।

किरंतन १२९/२७

मीठी वाणी के सम्बन्ध में कबीर जी कहते हैं–

ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय।

औरन को शीतल करे, आपहुं शीतल होय।।

इसी प्रकार सन्त तुलसीदास जी ने भी मधुर वाणी को वशीकरण मन्त्र की संज्ञा दी है–

तुलसी मीठे वचन से, सुख उपजत चहुं ओर।

वशीकरण यह मंत्र है, तजि दो वचन कठोर।।

सत्य प्रिय और हितकारी वाणी बोलने से संसार के सभी प्राणी प्रसन्न हो जाते हैं, इसलिए ऐसी वाणी बोलने में क्या दरिद्रता है।

कटु वाणी बहुत अनर्थकारी होती है। मर्मभेदी बाणों से भी वीर मनुष्य के हृदय को उतना कष्ट नहीं होता है, जितना कि कटु वाणी से। शस्त्रों के घाव तो भर जाते हैं, लेकिन कटु शब्दों के घाव नहीं भरते। यदि कोई कठोर और रूखी वाणी भी बोले, तो भी हमें हमेशा मीठी वाणी ही बोलनी चाहिए, क्योंकि जिस प्रकार मेघ खारा जल पीते हैं तथा उसी को मीठा बनाकर उगल देते हैं, उसी प्रकार सज्जन पुरुष दुष्टों के कठोर वचनों को पीकर पुनः

उसे मीठा बनाकर ही बोलते हैं।

क्षारं जलं वारिमुचः पिबन्ति तदेव कृत्वा मधुरं वमन्ति।
सन्तस्तथा दुर्जनदुर्वचांसि निपीय सुक्तानि समुद्गिरन्ति।।

जिस प्रकार धनुष से छूटा हुआ तीर कभी वापस नहीं आता, उसी प्रकार मुख से निकला हुआ शब्द वापस नहीं आता। अतः अपने हृदय रूपी तराजू पर तौले बिना मुख से कुछ भी नहीं कहना चाहिए। इस सम्बन्ध में कबीर जी का कथन है–

बोली एक अनमोल है, जो कोई बोले जान।
हिए तराजू तौल के, तब मुख बाहर आन।।
मधुर वचन है औषधि, कटुक वचन है तीर।
श्रवण द्वार हवै संचरे, साले सकल शरीर।।

महाभारत के युद्ध में लगभग ५० लाख व्यक्ति (१८ अक्षोहिणी सेना) मारे गये थे। इसके मूल में द्रौपदी द्वारा दुर्योधन को कहा हुआ वह कटु वचन था कि "अन्धों के पुत्र अन्धे ही होते हैं।" इसी प्रकार रामायण के युद्ध में होने वाले जनसंहार के मूल में सीता जी के उस कटु वचन का भी योग था, जो उन्होंने मारीच द्वारा राम की आवाज की नकल बनाकर बोले जाने पर लक्ष्मण जैसे ब्रह्मचारी के लिए कहा था। यदि लक्ष्मण सीता जी को छोड़कर नहीं जाते, तो उनका अपहरण होता ही नहीं।

कटु वचन कितना अनर्थकारी होता है, इसके सम्बन्ध में महाभारत का यह कथन अक्षरशः सत्य है कि तीखे बाणों के घाव भर जाते हैं तथा कुल्हाड़े से कटा हुआ वन भी हरा–भरा हो जाता है, किन्तु कठोर वाणी का घाव कभी भी नहीं भरता।

रोहते सायकैर्विद्ध व्रणं परशुना हतम्।

वाचा दुरुक्तं वीभत्से न संरोहते वाक्क्षतम्।।

महाभारत उद्योग पर्व ३४/७०

कठोर वाणी सुनने के पश्चात् भी हमें कितना सहनशील होना चाहिए, यह ऋषि दयानन्द जी के जीवन की एक घटना से स्पष्ट होता है–

जब श्री दयानन्द जी फर्रुखाबाद में गंगा के किनारे निवास कर रहे थे, तब पड़ोस में रहने वाला एक साधू उनके सामने आकर खूब गालियाँ देने लगता। दयानन्द जी कुछ कहने के स्थान पर केवल चुपचाप मुस्कराते रहते।

एक दिन एक भक्त फलों का एक टोकरा दयानन्द जी के पास लाया। उन्होंने उसमें से कुछ अच्छे फल

छाँटकर उस साधू के पास भिजवा दिये। साधू ने पुनः गालियाँ देनी शुरु कर दी और कहा कि जिसे मैं प्रतिदिन इतनी गालियाँ देता हूँ, वह मेरे लिए फल क्यों भिजवाएगा। दयानन्द जी ने दुबारा उस साधू के पास प्रेमपूर्वक फल भिजवाये, जिसका उस पर इतना अधिक असर पड़ा कि वह महर्षि के चरणों में लोटकर अपने अपराध की क्षमा माँगने लगा।

यदि इस संसार के महापुरुषों में प्रत्यक्ष अपमान सहने की इतनी शक्ति है, तो सुन्दरसाथ को यह आत्म-मन्थन करना होगा कि दूसरों को कटु वाणी न बोलने तथा दूसरों के कटु शब्दों को सहन करने की दिशा में उन्होंने अपने कदम कहाँ तक बढ़ाये हैं। खण्डनी के तीखे शब्दों से मर्माहित करने का नैतिक अधिकार किसी को भी नहीं है।

खंडनी कर खीजिए, जागे नहीं इन भांत।

दीजे आप ओलखाए के, यों साख देखाए साख्यात।।

कलस हिंदुस्तानी २३/१०

यद्यपि धर्मविरोधी मिथ्या मान्यताओं व आडम्बरों का खण्डन अवश्य करना चाहिए, किन्तु उत्तेजित होकर कटु शब्दों से नहीं, बल्कि बहुत अधिक शालीनता से प्रेमपूर्वक अपनी बात कहनी चाहिए। वस्तुतः खण्डन मिथ्या सिद्धान्तों का होना चाहिए, न कि राग-द्वेष से ग्रसित होकर व्यक्ति विशेष को तिरस्कृत करने की भावना से। सत्य, प्रिय, और हितकारी बात धीमे से भी कहने पर जादू सा असर करती है।

निष्पाप जीवन–

मानव जीवन में बाह्य शत्रुओं से उतना खतरा नहीं होता है, जितना आन्तरिक शत्रुओं से होता है। ये आन्तरिक शत्रु हैं– काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मत्सर (ईर्ष्या)। गीता में कहा गया है कि काम, क्रोध, एवं लोभ नरक के तीन द्वार हैं, इसलिए इनका परित्याग किये बिना कोई भी निष्पाप जीवन नहीं बिता सकता।

कामः क्रोधः तथा लोभः तस्मादेतद त्रयं त्यजेत।

माहिभूर्मा पृदाकुः। यजुर्वेद ६/१२

नरकस्य त्रिविधं द्वारं नाशनम् आत्मनः। गीता १६/२

पूर्वोक्त छः दोषों (शत्रुओं) को जीते बिना कोई भी व्यक्ति निष्पाप नहीं बन सकता है। जिस प्रकार एक ही मछली पूरे तालाब को गन्दा कर देती है, उसी प्रकार

दुर्गुणों से भरा एक ही व्यक्ति सारे समाज को धीरे–धीरे दूषित कर देता है। वेद में कहा गया है कि हे मानव! तू सर्प और भेड़िये की तरह कुटिल और हिंसक न बन।

जिस समाज में कलुषित मन वाले लोग होते हैं, वह समाज पतन की गर्त में गिर जाता है। ब्रह्मज्ञान तथा प्रेम लक्षणा भक्ति के संस्कारों से ही मन को विषय – वासनाओं के जाल से छुड़ाकर निष्पाप बनाया जा सकता है। श्रीमुखवाणी का कथन है–

वचने कामस धोई काढ़िए, राखिए नहीं रज मात्र।
जोग बाई सर्वे जीतिए, त्यारे थैए प्रेमना पात्र।।

किरंतन ६८/८

सभी महान पुरुषों एवं परमहंसों का जीवन निष्पाप रहा है, तभी वे संसार के पथ–प्रदर्शक बन सके। ज्ञान,

प्रेम, और संघर्षों की अग्नि में तपकर वे अपने छः शत्रुओं को पराजित करने के कारण ही सबके पूज्य बन गये। महाराज श्री युगलदास जी एवं महाराज श्री राम रतन दास जी जैसे परमहंसों ने अपने निष्पाप जीवन से सारे समाज में आध्यात्मिक चेतना का शँख फूँका और लाखों जनमानस के प्रेरणास्रोत एवं पूज्य बन गये। हृदय को पवित्र किए बिना जीवन के किसी भी क्षेत्र में उन्नति नहीं की जा सकती।

सिद्धान्त निष्ठा–

सच्चिदानन्द परब्रह्म के सिवाय अन्य कोई भी व्यक्ति पूर्णता का दावा नहीं कर सकता, भले ही वह इस सृष्टि की महानतम् विभूति क्यों न हो। कोई भी व्यक्ति किसी

भी क्षेत्र में कितना ही महान क्यों न हो, कहीं न कहीं न्यूनता रह ही जाती है। सांख्य शास्त्र में कहा गया है कि जिस प्रकार भौंरा अनेक फूलों से पराग चूसता है, उसी प्रकार विवेकवान व्यक्ति को अनेक धर्मग्रन्थों तथा महापुरुषों से ज्ञान ग्रहण करना चाहिए तथा उनकी सत्य राह पर चलने का पूर्ण प्रयास करना चाहिए।

जिस प्रकार, जब हम किसी गुलाब के फूल के पास खड़े होते हैं तो हमारा सम्बन्ध केवल गुलाब के फूलों के सौन्दर्य तथा उनकी सुगन्धि से होता है, न कि उसके काँटों से, उसी प्रकार हमें महापुरुषों के जीवन की अच्छाइयों को ही ग्रहण करना चाहिए, त्रुटियों को नहीं।

यद्यपि किसी भी महापुरुष में छिद्रान्वेषण (दोष दृष्टि) नहीं करना चाहिए, अपितु समीक्षा (सत्य-असत्य की खोज) करके केवल सत्य को ही ग्रहण करना चाहिए

तथा असत्य का पूर्णतया परित्याग करना चाहिए।

अष्ट प्रमाणों (प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव, और अभाव) से सत्य-असत्य की परीक्षा करके केवल सत्य का ही अनुसरण करना चाहिए, असत्य का नहीं। यह सर्वथा ध्यान में रखना चाहिए कि कहीं भावनाओं में बहकाकर व्यक्तिवाद की आँधी में सत्य को छिपाया न जाये। मुण्डकोपनिषद् का कथन है कि अन्ततोगत्वा सत्य की ही विजय होती है, असत्य की नहीं। सत्य से ही परम तत्व की प्राप्ति होती है।

> सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।
>
> मुण्डक उपनिषद्

भले ही सारा संसार आपके विरुद्ध हो जाये, किन्तु सत्य की राह छोड़कर व्यक्तिवाद की आँधी में नहीं बहना चाहिए। श्रीमुखवाणी का कथन है–

सांचा री साहेब सांच सों पाइए, सांच को सांच है प्यारा।

किरंतन ८/७

यदि हमें धाम धनी को पाना है, तो किसी भी स्थिति में सत्य का आश्रय नहीं छोड़ना चाहिए। यजुर्वेद का उपदेश है– सत्य के मार्ग से चल।

अहिंसा–

मन, वाणी, तथा कर्म से किसी भी प्राणी को पीड़ा न देना अहिंसा है और यही परम धर्म है। प्रत्येक सुन्दरसाथ का यह नैतिक उत्तरदायित्व है कि वह किसी

भी प्राणी का मन से, वाणी से, या कर्म से दिल न दुखाए।

रेहेवे निरगुन होए के, और आहार भी निरगुन।
साफ दिल सोहागनी, कबहूं न दुखावे किन।।

कलस हिंदुस्तानी ११/६

जब "आत्मवत् सर्व भूतेषु" अर्थात् सभी प्राणियों में अपनी जैसी ही चेतना का आभास होने लगता है, तो किसी के द्वारा कष्ट पाने या अपमानित होने पर भी उसे बदले में किसी प्रकार का कष्ट देने या अपमानित करने का भाव नहीं होता। इस सम्बन्ध में एक घटना बहुत ही प्रेरणाप्रद है–

अमृतसर में "झण्डू" नामक एक महात्मा रहा करते थे। एक बार वे सड़क के किनारे–किनारे यात्रा कर रहे

थे। उनके पीछे योगेश्वरानन्द जी जैसे महान योगी भी थे। पीछे से एक तांगे वाला आया और उसने ४-५ कोड़े झण्डू जी को जड़ दिये तथा कई गालियाँ भी दे दी। श्री योगेश्वरानन्द जी ने घोड़े की लगाम पकड़कर तांगे को रोक लिया और वे इस दुर्व्यवहार का कारण अभी पूछ ही रहे थे कि श्री झण्डू महात्मा जी क्षमा माँगते हुए कहने लगे कि "मुझसे गलती हो गयी जो आपका मार्ग मेरे कारण रुक गया।" योगेश्वरानन्द जी ने महात्मा झण्डू जी से कहा कि आप भी अजीब महात्मा हैं। बिना किसी गलती के इस तांगे वाले ने आपको गन्दी गालियाँ दीं तथा कई कोड़े भी मारे, फिर भी आप उसी से क्षमा माँग रहे हैं। मुस्कराते हुए झण्डू महात्मा जी ने कहा कि मैं अभी अहिंसा व्रत के पालन का यत्न कर रहा हूँ। ऐसा कहकर मुस्कराते हुए वे चले गये।

इसी प्रकार महावीर स्वामी भी जब तप कर रहे थे तो एक ग्वाले ने उनके कान में कील ठोक दी, फिर भी महावीर स्वामी ने प्रतिरोध में एक भी शब्द नहीं कहा और उनके हृदय में उस ग्वाले के प्रति कुछ भी कटु भावना नहीं हुई।

स्वयं किसी का दिल न दुखाना अच्छी बात है, किन्तु किसी के द्वारा दिल दुखाए जाने पर भी उसके प्रति मन में कटु भावना न रखना तथा चेहरे पर किसी तरह का विकार न आने देना महानता की पराकाष्ठा है। परमधाम का दावा करने वाले "ब्रह्ममुनि" सुन्दरसाथ जी से यही आशा की जाती है कि वे पूर्वोक्त दोनों घटनाक्रमों (झण्डू महात्मा तथा महावीर स्वामी के साथ घटित) की इन अनमोल शिक्षाओं को अपने जीवन में उतारने का प्रयास करेंगे।

योग दर्शन का कथन है कि जब मन, वाणी, एवं कर्म से अहिंसा में पूर्ण स्थिति हो जाती है , तो सभी प्राणियों से उसका वैर भाव समाप्त हो जाता है। यहाँ तक कि सर्प, बिच्छु, सिंह, तथा बाघ आदि भयंकर जानवर भी उस पर हमला नहीं करते, बल्कि उसके स्नेह-पाश में बन्ध जाते हैं।

अहिंसा प्रतिष्ठायाम् तत् सन्निधौ वैर त्यागः।

योग दर्शन २/३५

श्रीमुखवाणी का कथन है-

वाको आग खाग बाघ नाग न डरावे, गुन अंग इंद्री से होत रहीत।

डर सकल सामी इनसे डरपत, या विध पाइए प्रेम परतीत।।

किरंतन ९/३

जो प्रियतम के प्रेम में रंग जाता है, वह तीनों गुणों के दुष्प्रभावों, अन्तःकरण के विकारों, तथा इन्द्रियों की विकृत चाहनाओं से रहित हो जाता है, तथा उसे बाघ, भयंकर नाग, पक्षियों, तथा अग्नि आदि से किसी भी तरह का कोई भय नहीं होता है।

शत्रु को नष्ट करने का सबसे सरल तरीका यह है कि शत्रुता को समाप्त कर उसे मित्र बना लिया जाये। वस्तुतः इस संसार में कोई किसी का न तो मित्र है और न शत्रु। शत्रु और मित्र व्यवहार से ही पैदा होते हैं। यदि हम अहिंसा में पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हो जायें, तो संसार के सभी प्राणियों से हमारा वैर भाव समाप्त हो जाएगा और हम उसी प्रकार सबके प्यारे बन जायेंगे, जिस प्रकार गौतम बुद्ध के चरणों में शराब के नशे में धुत्त हाथी भी नतमस्तक हो गया था तथा समाधि की अवस्था में

भयंकर आँधी-तूफान चलने पर उनकी सुरक्षा के लिए अजगर उनके चारों तरफ लिपट गया था। इसी प्रकार परमहंस महाराज श्री रामरतन जी के साथ प्रायः भयानक नागों एवं सर्पों का समूह उनके प्रति सेवा भावना से रहा करता था।

अपरिग्रह-

अपरिग्रह से तात्पर्य है, अनावश्यक भोग्य पदार्थों का संग्रह न करना। सृष्टि के सभी पदार्थों का वास्तविक स्वामी तो मात्र परब्रह्म है। यदि किसी के घर में इतना अधिक अन्न भरा हो कि वह सड़ रहा हो तथा उसके पड़ोसी भूख से तड़प रहे हों, तो इस प्रकार की स्थिति धर्म के विरुद्ध है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति को एक-दूसरे

के सुख–दुःख के प्रति संवेदनशील होना चाहिए। ऋग्वेद १०/११७/६ का कथन है– "केवलाधो भवति केवलादी" अर्थात् धन का अकेले उपभोग करना पाप है। वस्तुतः मिल–बाँटकर खाने में जो आनन्द है, वह आनन्द अकेले खाने में नहीं है। इसलिए वेद का उपदेश है कि हम साथ–साथ भोजन करने वाले हों (सह भक्षाः स्याम)। समाज, राष्ट्र, या सम्पूर्ण विश्व में जो कटुता का वातावरण है, उसके मूल में अपरिग्रह का पालन न होना ही है।

आज हर व्यक्ति केवल अपने सुख की ही चिन्ता करता है। उसकी पूर्ति में वह किसी के ऊपर जुल्म ढाने में भी नहीं झिझकता। यह आसुरी प्रवृत्ति है। कुत्ते और बिल्ली आदि तामसिक प्राणी केवल अपने ही खाने की चिन्ता करते हैं, परिणाम स्वरूप उनमें कभी भी मेल नहीं

रहता। मनुष्य इस सृष्टि का सबसे अधिक बुद्धिजीवी प्राणी है। उससे तो यही आशा की जाती है कि अपनी आवश्यकता से बचे हुए धन को मानवता के सुखार्थ समर्पित कर देवे।

सुन्दरसाथ को किस प्रकार अपरिग्रही होना चाहिए, उसके बारे में तारतम वाणी में इस प्रकार कहा गया है–

मोमिन रखे मोमिन सो, जो तन मन अपना माल।
सो अरवा नही अर्स की, ना तिन सिर नूर जमाल।।

किरंतन ११८/३

यदि सुन्दरसाथ आपस में जाति, रूप, रंग आदि के आधार पर छूतछात रखते हैं, मन में एक–दूसरे के विपरीत संकीर्ण भावनायें रखते हैं, तथा धन को केवल व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए ही प्रयोग करते हैं, उसमें अन्यों

को सहभागी नहीं बनाते हैं, तो वे निश्चित रूप से न तो ब्रह्मसृष्टि है और न उनके ऊपर धाम धनी की मेहर ही होती है।

पट पेहेर खाए चिकना, हेम जवेर सिनगार।
हक लज्जत आई मोमिनों, जिन दुनी करी मुरदार।।

किरंतन ११०/८

संसार के जीवों की आत्मिक दृष्टि नहीं होती। अच्छे वस्त्रों को पहनने, स्वादिष्ट भोजन करने, तथा सोने के जवाहरातों से अपने शरीर को सजाने में ही अधिक रुचि लेते हैं। परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों के लिए इस संसार के झूठे सुखों का कोई महत्व नहीं होता। उन्होंने संसार को तिलाञ्जलि दे दी होती है। इसी कारण उन्हें अपने प्राणवल्लभ के प्रेम की लज्जत (अनुभूति, स्वाद) मिलती

रहती है।

धन की तीन ही गति होती है– १. दान २. भोग ३. विनाश। विवेकवान व्यक्ति तो वेद के इस कथन का अक्षरशः पालन करते हैं कि परमात्मा द्वारा दिए हुए धन का त्यागपूर्वक भोग करो, किसी के भी धन का लालच मत करो। जिस दिन इस दुनिया का प्रत्येक व्यक्ति धन को परमात्मा की वस्तु समझकर उसका त्यागपूर्वक उपभोग करने लगेगा तथा अनावश्यक संचय की अपेक्षा मानवता के कल्याण में उसको खर्च करने लगेगा, उस दिन संसार में सबको मस्त करने वाली प्रेम की सुगन्धित बयार बहने लगेगी।

> तेन त्यक्तेन भुन्जीथा मा गृधः कस्यस्वित् धनम्।
>
> यजुर्वेद ४०/९

भारतीय संस्कृति तो स्पष्ट रूप से यह घोषणा करती है कि जो परायी पत्नी को माता के समान और दूसरों के धन को मिट्टी के समान समझता है, वही विवेकवान है।

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्व भूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।।

लौकिक सुखों के उपभोग की तृष्णा रूपी अग्नि में परिग्रह (अत्यधिक संचय) उस घी का कार्य करता है, जो तृष्णा की अग्नि को बढ़ाता ही जाता है। जिन पर धनी की मेहर होती है, वे ही इसके जाल में नहीं फँसते।

सेवा–

सेवा धर्म योगियों के लिए भी कठिन कहा गया है

क्योंकि यदि सेवक कम बोलता है तो अभिमानी, अधिक बोलता है तो बकवादी, प्रशंसा करता है तो चापलूस, तथा स्पष्ट रूप से सत्य कहता है तो कटुभाषी कहा जाता है, ऐसा भर्तृहरि जी का कथन है।

सेवा से ही मानवता का श्रृंगार है। परिवार, समाज, राष्ट्र, और सम्पूर्ण मानवता तथा प्राणिमात्र की सेवा तीन प्रकार से की जाती है– १. तन से २. मन से ३. धन से। यदि सेवा के साथ प्रेम भी जुड़ जाता है, तो सोने में सुगन्धि वाली स्थिति हो जाती है। प्रेम और सेवा से रहित मानव जीवन निःसार है। संसार में अब तक एक भी महापुरुष ऐसा नहीं हुआ है, जिसके जीवन में सेवा का महत्व न रहा हो, अन्तर केवल इतना ही रहा है कि किसी ने तन से सेवा की है, तो किसी ने ज्ञान से, और किसी ने धन से। रोगियों की सेवा करने वाले ईसा,

अपने ज्ञानोपदेश से मानवता को अमृत पिलाने वाले गौतम बुद्ध, धर्म-संस्कृति की रक्षा के साथ-साथ आडम्बरों को समाप्त करने वाले आदिशंकराचार्य तथा महर्षि दयानन्द जिस प्रकार विश्व में आदरणीय हैं, उसी प्रकार विश्व-शान्ति एवं राष्ट्र-रक्षा में अपना तन, मन, धन अर्पित करने वाले भी सम्माननीय हैं।

श्रीमुखवाणी में सेवा का भाव अध्यात्म जगत से लिया जाता है, जिसमें परब्रह्म की पहचान कराने वाले सद्गुरु तथा सुन्दरसाथ की सेवा की महिमा बहुत ही स्पष्ट शब्दों में बतायी गयी है। इसके अतिरिक्त अपनी आत्मा के प्रियतम पूर्णब्रह्म अक्षरातीत को भी प्रेमपूर्वक सेवा से रिझाना होता है, जो चार स्तरों- कर्मकाण्ड, उपासना, ज्ञान, और विज्ञान (शरीयत, तरीकत, हकीकत, तथा मारफत)- के स्वरूप से पूर्ण होती है।

मुख थी सेवा तूने सूं कहूं, जो तूं अंतर आडो टाल।
अनेक विध सेवा तणी, तूने उपजसे तत्काल।।

रास ३/२५

धाम धनी कहते हैं कि मैं अपने मुख से तुम्हें सेवा के लिए किस प्रकार कहूँ? यदि तुम अपने अन्दर माया के पर्दे को हटा दो, तो तुम्हें मेरे स्वरूप की पहचान हो जाएगी तथा तुम्हारे मन में सेवा के अनेक तरीके निकल आयेंगे।

में चित मांहे चितव्यूं, जाण्यूं करसूं सेवा सार।
मल्यो धणी मूने धामनो, सुफल करूं अवतार।।

रास १/२५

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मैंने अपने मन में सोचा कि इस खेल में मुझे जब धाम के धनी मिल गये हैं

तो उनकी सेवा करके रिझा लूँ, जिससे इस खेल में मेरा आना सफल हो जाये।

पख पचवीस छे अति भला, पण ए छे आपणो धरम।
साख्यात तणी सेवा कीजिए, ए रुदे राखजो मरम।।

रास १/८१

परमधाम के २५ पक्ष अति सुन्दर हैं, जिनमें हमें अपनी सुरता से घूमना है। लेकिन एक गुह्य रहस्य की बात है कि हमारा सबसे बड़ा धर्म है, अपने धाम धनी को सेवा से रिझा लेना।

कर परनाम लागूं चरने, करूं सेवा प्यार अति घने।
करूं दंडवत जीव के मन, देऊं प्रदखिना रात ने दिन।।

प्रकास हिंदुस्तानी १०/२५

मेरे मन में यही चाहना है कि मैं अपने धाम धनी के चरणों में प्रणाम करके बहुत अधिक प्यार के साथ उनकी सेवा करती रहूँ तथा रात–दिन उनको दण्डवत प्रणाम करते हुए मन से उनकी परिक्रमा करती रहूँ।

मैं सेवा करूं सर्वा अंगों, देऊं प्रदखिना रात में दिन।
पल न वालूं निरखूं नेत्रे, आतम लगाए लगन।।

प्रकास हिंदुस्तानी २३/१६

मेरी यही चाहना है कि मैं अपने धनी की दिन–रात प्रदक्षिणा करते हुए उनकी सेवा करूँ तथा एक पल के लिए भी अपने नेत्रों से ओझल न होने दूँ।

सेवा कीजे पहचान चित धर, कारन अपने आए फेर।
भी अवसर आयो है हाथ, चेतन कर दिए प्राणनाथ।।

प्रकास हिंदुस्तानी १३/३

अब हमारे पास यह सुनहरा अवसर है कि धाम धनी हमारे लिए दूसरे तन (श्री मिहिरराज जी) के अन्दर आ गये हैं। उनकी पूर्ण पहचान कर सच्चे मन से सेवा करनी है। इस लाभ को लेने के लिए धाम धनी ने ही हमें सावधान कर दिया है।

कहे इंद्रावती सुन्दर बाई चरने, सेवा पिउ की प्यार अति घने।

और कछु न इन सेवा समान, जो दिल सनकूल करे पहचान।।

प्रकास हिंदुस्तानी २४/२५

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मेरी इच्छा है कि मैं अपने धनी की सेवा बहुत अधिक प्यार के साथ करूँ। जब दिल में धनी के स्वरूप की पहचान हो जाती है, तो प्रेम भरी सेवा के समान अन्य कुछ भी नहीं है।

सनेह सों सेवा कीजो धनी, घर की पेहचान देखियो अपनी।

तुम प्रेम सेवाएं पाओगे पार, ए वचन धनी के कहे निरधार।।

प्रकास हिंदुस्तानी ३४/१९

धाम धनी ने ये वचन कहे हैं कि अपनी आत्मा के प्रियतम श्री राज जी की अति प्रेम से जो सेवा की जाएगी, उससे ही इस ठगिनी माया से पार हुआ जा सकेगा।

जिन सुध सेवा की नहीं, ना कछु समझे बात।

सो काहे को गिनावे आप साथ में, जिन सुध न सुपन साख्यात।।

किरंतन ६३/१

जिन्हें न तो सेवा की कोई सुध है और न ज्ञान की कोई बात ही जानते हैं, उन्हें सुन्दरसाथ कहलाने का कोई भी अधिकार नहीं है।

अपनी सच्ची सेवा से श्री देवचन्द्र जी ने हरिदास जी को वश में कर लिया था। कोई भी महान विभूति सच्ची सेवा से अवश्य ही अपनी कृपा बरसाती है। हमें अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी की भी इसी प्रेम से सेवा करनी चाहिए, यही सबसे बड़ा काम है–

बरनन करते जिनको, धनी केहेते सोई धाम।
सेवा सुरत संभारियो, करना यही काम।।

किरंतन ८०/३

इस जागनी ब्रह्माण्ड में धनी के सुख की लज्जत तभी मिलेगी, जब हम धनी एवं सुन्दरसाथ की प्रेम से सेवा करने के इस सुनहरे अवसर को न गँवायें।

ज्यों तुम पेहेले भरे पांऊ, यों ही चलो जिन भूलो दाऊ।
भी देखो ए पेहेले वचन, प्रेम सेवा यों राखो मन।।

प्रकास हिंदुस्तानी ४/२०

सन्तोष–

आज के भौतिकवादी युग में सुखों की लालसा बढ़ती ही जा रही है। करोड़पति व्यक्ति अरबपति बनने का सपना संजोये बैठे हैं, किन्तु यदि वे अरबपति बन जाते हैं तो भी अधिक धन की तृष्णा बढ़ती जाती है। यद्यपि यह पूर्ण सत्य है कि मनुष्य को ज्ञान और भक्ति के क्षेत्र में कुछ उपलब्धियाँ हो जाने पर सन्तुष्ट होकर नहीं बैठ जाना चाहिए, बल्कि अपने ज्ञान और भक्ति की प्यास को हमेशा अक्षुण्ण (अखण्ड) रखना चाहिए। भौतिक सुखों की प्यास तो सन्तोष रूपी धन के मिले बिना नहीं मिट सकती। रहीम दास जी ने कहा है–

गोधन गजधन बाजिधन, और रतनधन खानि।

जब आवे संतोष धन, सब धन धूल समानि।।

मायावी सुखों से कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती। भर्तृहरि का कथन है कि तृष्णा बूढ़ी नहीं होती , बल्कि हम ही बूढ़े हो जाते हैं।

तृष्णा न जीर्णा वयमेंव जीर्णाः।

भर्तृहरि नीतिशतक श्लोक ७

जिसने विवेकपूर्वक सन्तोष वृत्ति धारण कर ली कि अनित्य सुखों के पीछे भागना बहुत बड़ी भूल है, वह अपने जीवन का अनमोल समय परमात्म चिन्तन में लगाकर शाश्वत आनन्द की प्राप्ति कर लेता है। इसके विपरीत सन्तोष से रहित व्यक्ति बुढ़ापे की अवस्था में भी धनोपार्जन तथा घर के मोहजाल में फँसा रहता है।

इसलिए सन्तोष एक अनमोल धन है–

चाह नहीं चिन्ता नहीं, मनुआ बेपरवाह।
जाको कुछ नहीं चाहिए, सोई शहंशाह।।

हमें इस प्रकार का भाव अपने हृदय में रखना चाहिए कि अब तक जो कुछ भी हमारे साथ पल–पल बीता है और भविष्य में बीतेगा तथा वर्तमान में व्यतीत हो रहा है, सब में धनी की कृपा हमारे ऊपर बरसती रही है तथा इसमें धनी का प्रेम किसी न किसी रूप में छिपा हुआ है, इसलिए हमें किसी भी स्थिति में चिन्तित नहीं होना चाहिए।

महामति कहे ए मोमिनों, तुम पर दम दम जो बरतत।
सो सब इस्क हक का, पल पल मेहेर करत।।

खिलवत १२/१००

यक्ष ने युधिष्ठर से पूछा कि इस संसार में कौन सुखी है? उत्तर में युधिष्ठर ने कहा कि ऋण से हीन सन्तोषी व्यक्ति ही सुखी है। सन्तोष से रहित व्यक्ति न तो भौतिक क्षेत्र में सफल हो सकता है और न ही आध्यात्मिक क्षेत्र में।

थोड़ी सी असफलता एवं दुःख के दिनों में हम अधीर हो उठते हैं। हमारा ईमान भी कुछ डगमगाने सा लगता है। हमें यह ध्यान रखना होगा कि रात्रि के बाद दिन अवश्य होता है। दुःख के बाद सुख एवं असफलता के बाद सफलता की घड़ी अवश्य आती है। धनी की मेहर पर हमें विश्वास रखते हुए सन्तोष धारण करना चाहिए तथा उनके इस कथन को अपने मन में गाँठ बाँध लेनी चाहिए कि धनी के हुकम से सब कुछ अवश्य ठीक हो जाएगा।

जिन हरबराओ मोमिनों, हुकुम करत आपे काम।
खोल देखो दृष्ट रूह की, जिन देखो दृष्टि चाम।।

सिनगार २९/९३

सन्तोष का तात्पर्य अकर्मण्य एवं भाग्य भरोसे होकर निठल्ले बैठे रहना नहीं है, बल्कि पूर्ण पुरुषार्थ से निष्काम–कर्म योग की राह पर चलना है अर्थात् कर्म करते हुए उसके फल की आसक्ति न रखना ही सच्चा सन्तोष है।

आशावादी होना आस्तिकता है तथा निराशावादी होना नास्तिकता का परिचायक है। नीति के कथनों में उद्योगी सिंहपुरुष ऐश्वर्य (लक्ष्मी) को प्राप्त कर लेते हैं। भाग्य द्वारा दिया जाता है, ऐसा तो केवल कायर पुरुष ही कहते हैं। भाग्य को छोड़कर पुरुषार्थ करो। यत्न करने

पर भी यदि सफलता न मिले, तो आत्म मन्थन करो कि चूक कहाँ हुई।

> उद्योगिनं पुरुषं सिंहमुपैति लक्ष्मी,
> दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति।
> दैवम् निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या,
> यत्ने कृते यदि न सिध्यन्ति कोऽत्र दोषः।।

वस्तुतः समाज में सुख की स्थापना करने के लिए सन्तोष वृत्ति को अनिवार्य रूप से धारण करना पड़ेगा।

स्वाध्याय–

स्वाध्याय का तात्पर्य है, परब्रह्म के नाम का जप या मोक्ष का ज्ञान देने वाले शास्त्रों का अध्ययन। स्वाध्याय

से रहित समाज अन्धकार में भटक जाता है।

हमारा यह नैतिक उत्तरदायित्व है कि हम प्रतिदिन स्वाध्याय करें तथा दूसरों को भी इसके लिए प्रेरित करें।

तैत्तिरीयोपनिषद का कथन है कि स्वाध्याय में प्रमाद नहीं करना चाहिए।

स्वाध्यायात् सा प्रमदः। सत्यं च स्वाध्याय प्रवचने च।

तैत्तिरीयोपनिषद

यदि कोई व्यक्ति प्रतिदिन १ घण्टा भी स्वाध्याय करता है, तो पूरे वर्ष में ३६५ घण्टे हो जाते हैं। इस प्रकार १० वर्षों में कई ग्रन्थों का ज्ञान हो जाएगा।

चाहे ब्रह्मचर्य जीवन हो, ग्रहस्थ हो, या वानप्रस्थ, स्वाध्याय की महिमा सभी में है। तैत्तिरीयोपनिषद में कहा गया है कि एक गृहस्थ को प्रतिदिन स्वाध्याय और

प्रवचन करते हुए अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए। अपौरुषेय वेद वाणी तथा श्री प्राणनाथ जी की ब्रह्मवाणी श्री कुलजम स्वरूप का चिन्तन–मनन ही ब्रह्मयज्ञ है। ब्रह्मवाणी की चर्चा सुनना और सुनाना कितना महत्वपूर्ण है, इस सम्बन्ध में श्रीमुखवाणी का यह कथन देखने योग्य है–

ते माटे तमें सुणजो साथ, एक कहूं अनुपम बात।
चरचा सुणजो दिन ने रात, आपण ने त्रुठा प्राणनाथ।।

रास २/१७

एक बहुत ही अलौकिक बात सुनो। रात–दिन अब हमें ब्रह्मवाणी की चर्चा सुननी है, ताकि अपने धाम धनी की पहचान करके उन पर फिदा हो जायें।

ब्रह्मवाणी श्री प्राणनाथ जी का वाङ्मय कलेवर

(शरीर) है। ब्रह्मवाणी के चिन्तन–मनन में ऐसा प्रतीत होता है कि हम साक्षात् अपने धाम धनी से ही वार्ता कर रहे हैं। वर्तमान में जो अज्ञानता का अन्धकार फैला हुआ है, वह ब्रह्मवाणी के स्वाध्याय से ही दूर हो सकता है। अतः समाज में स्वाध्याय की प्रक्रिया को अधिक से अधिक फैलाना चाहिए।

शिष्टता, सहनशीलता, एवं शालीनता–

धर्मानुकूल एक–दूसरे के प्रति व्यवहार करना शिष्टाचार या शिष्टता है।

सुख–दुःख, मान–अपमान, लाभ–हानि आदि को निर्विकार भाव से सहन करना सहनशीलता है।

महाभारत में शील की परिभाषा इस प्रकार की गयी

है– मन, वाणी, तथा क्रिया द्वारा किसी भी प्राणी से द्रोह न करना, सब पर दया करना, और यथाशक्ति दान देना, यह शील कहलाता है, जिसकी सब लोग प्रशंसा करते हैं।

धर्म, सत्य, सदाचार, बल, और लक्ष्मी– ये सभी शील के ही आधार में रहते हैं। शील ही इन सबकी जड़ है, इसमें कोई भी संशय नहीं है।

अपना जो भी पुरुषार्थ और कर्म दूसरों के लिए हितकर न हो अथवा जिसे करने में संकोच का अनुभव होता हो, उसे किसी भी तरह नहीं करना चाहिए।

जो कर्म जिस प्रकार करने से भरी सभा में मनुष्य की प्रशंसा हो, उसे उसी प्रकार करना चाहिए। यह संक्षेप में शील का स्वरूप बताया गया है।

अद्रोहः सर्व भूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च शीलमेंतत् प्रशस्यते।।
धर्मः सत्यं तथा वृत्तं बले चैव तथाप्यहम्।
शील मूला महाप्राज्ञ सदा नास्त्यत्र संशयः।।
यदन्येषां हितं न स्यादात्मनः कर्म पौरुषम्।
अपत्रपेत वा येन न तत् कुर्यात कथंचन्।।
तत्तु कर्म तथा कुर्याद् येन श्लाघ्येत् संसदि।
शीलं समासेनैतत् ते कथितं कुरुसत्तम्।।

महाभारत शान्ति पर्व १२४/६६,६२,६८,२५

शील से युक्त व्यक्ति ही शालीन कहलाता है। समाज में हमारा सारा व्यवहार इन्हीं तीन बिन्दुओं – शिष्टता, शालीनता, एवं सहनशीलता– पर आधारित होना

चाहिए। वस्तुतः शिष्टता और शालीनता में कोई विशेष अन्तर नहीं है। शिष्टता के साथ जब सात्विक भावों की अधिकता हो जाती है, तो वह शालीनता कहलाती है।

शीलता और सहनशीलता ही मानवता का अमोघ श्रृंगार हैं। इससे रहित कोई व्यक्ति अध्यात्म की सर्वोच्च मन्जिल को प्राप्त नहीं कर सकता।

सहनशीलता सबसे बड़ा अस्त्र है। संसार के सभी महापुरुषों ने इसी के बल पर अपने कट्टर विरोधियों को भी नतमस्तक कर दिया। श्रीमुखवाणी का कथन है–

कोई देत कसाला तुमको, तुम भला चाहियो तिन।
सरत धाम की न छोड़ियो, सुरत पीछे फिराओ जिन।।

किरंतन ८६/१६

यदि कोई तुम्हें कष्ट भी दे, तब भी तुम उसका भला

ही करो और अपना ध्यान केवल परमधाम की तरफ किये रहो।

शीलता और सहनशीलता के सम्बन्ध में एक सत्य घटना वर्णित की जा रही है–

महाराष्ट्र में एक महान सन्त एकनाथ जी हुए हैं। एक दिन वे प्रातःकाल गोदावरी नदी में स्नान करके आ रहे थे कि एक यवन युवक ने वृक्ष के ऊपर से उन पर कुल्ला कर दिया। अपने चेहरे पर बिना कोई विकार लाये हुए एकनाथ जी वापस लौट गये तथा पुनः स्नान कर जैसे ही उस पेड़ के नीचे से गुजरे, उस दुष्ट युवक ने पुनः उनके ऊपर कुल्ला कर दिया। बिना क्रोध किए सन्त एकनाथ जी पुनः गोदावरी में स्नान करने चले गये। इस प्रकार वे १०७ बार स्नान करके आये तथा हमेशा की तरह ही उस युवक ने उनके ऊपर कुल्ला किया। जब

१०८वीं बार वे स्नान करके आ रहे थे, तो वह मुस्लिम युवक उनके चरणों में लोट-पोट होकर अपने अपराधों की क्षमा माँगने लगा। हँसते हुए एकनाथ जी ने उत्तर दिया कि तुम्हारे कारण तो मुझे आज १०८ बार गोदावरी में स्नान करने का पुण्य मिला है।

इस घटनाक्रम को पढ़कर हर सुन्दरसाथ से यही आशा की जाती है कि वे सन्त एकनाथ जैसी विनम्रता, सहनशीलता, एवं शालीनता की राह पर चल दिखाने का प्रयास करेंगे।

सादा जीवन उच्च विचार-

भर्तृहरि का कथन है कि पुरुषों को चन्द्रमा के समान उज्ज्वल हार और बाजूबन्ध आदि आभूषण शोभा

नहीं देते, बल्कि उसकी शोभा ज्ञान–गम्भीर वाणी से होती है। वाणी के आभूषण के सामने वस्त्रों–आभूषणों की शोभा कहीं नहीं ठहरती।

केयूराणि न भूषयन्ति पुरुषं, न हारा न चन्द्रोज्ज्वला न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालंकृता मूर्धजाः।

वाणी एका समलंकरोति पुरुषं, या संस्कृता धार्यते क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं, वाग्भूषण भूषणं।।

भर्तृहरि नीति शतक १५

किन्तु दुर्भाग्यवश आज के भौतिकवादी युग में व्यक्तित्व की पहचान वस्त्रों से ही आंकी जाने लगी है। इस सम्बन्ध में एक घटना इस प्रकार है–

स्वामी विवेकानन्द अमेरिका के शिकागो शहर में भ्रमण कर रहे थे। अचानक उनके पीछे एक पति–पत्नी

बातें कर रहे थे– "Look at this gentleman." स्वामी विवेकानन्द जी समझ गये कि ये अंग्रेज मेरी भारतीय वेशभूषा की हँसी उड़ा रहे हैं, तो उन्होंने बहुत ही शालीनता के शब्दों में उत्तर दिया– "प्रिय बहन! आपके देश में केवल कपड़ों से ही सज्जन बना जाता है, किन्तु मेरे भारत में केवल चरित्र से।" उनके इस कथन से अंग्रेज दम्पति नतमस्तक हो गये।

परमहंस महाराज श्री रामरतन दास जी ने अपने धनी की खोज में लम्बे समय तक एक लंगोटी का ही आधार लिया। महर्षि दयानन्द ने छः वर्ष तक केवल भोजपत्र की कौपीन (लंगोटी) पहनकर बर्फीली गंगोत्री के पास गुफा में तप किया था। महावीर स्वामी आजीवन नग्न रहे। गौतम बुद्ध जब तप से उठे तो उनके शरीर पर कोई वस्त्र नहीं थे। शव के दाह के बचे वस्त्रों से लंगोटी

बनाकर वे भिक्षा माँगने गाँव पहुँचे थे। आज सारा विश्व इन महापुरुषों के प्रति नतमस्तक है। इन महापुरुषों की शोभा इनके ज्ञान, चरित्र, तप, और त्याग के कारण है। इनकी शोभा के समकक्ष हीरे–मोतियों के आभूषण धारण करने वाला कोई राजपुरुष नहीं ठहर सकता है।

सुन्दरसाथ की शोभा वस्त्र, आभूषण, तथा सौन्दर्य प्रसाधनों से अपने शरीर को सजाने से नहीं, बल्कि परमधाम के अलौकिक ब्रह्मज्ञान से संसार को अखण्ड मुक्ति दिलाने में है।

मोमिन दिल कोमल कहया, तो अर्स पाया खिताब।
तो दिल मोमिन रूह का, तिन कैसा होसी मुख आब।।

सिनगार २०/१५

ब्रह्मसृष्टि का हृदय फूल की तरह कोमल होता है। उस

कोमल हृदय में प्रेम लक्षणा भक्ति की रसधार बहे जिसमें सारा संसार डूब जाये, यही हमारा लक्ष्य होना चाहिए और हमारा श्रृंगार भी।

याको प्रेमें के भूखन, याके प्रेमें के हैं तन।
याके प्रेमें के वस्तर, ए बसत प्रेम के घर।।

परिकरमा १/३३

सम्पूर्ण मानव समाज के प्रति हमारा कर्त्तव्य–

युगों–युगों से संसार यह बाट देखता रहा है कि सच्चिदानन्द परब्रह्म का वह शुद्ध ब्रह्मज्ञान हमें कब प्राप्त हो, जिससे हम इस भवसागर से पार हो सकें। परब्रह्म की ब्रह्मवाणी का प्रकाश सम्पूर्ण प्राणी मात्र के लिए है। वेद का कथन है कि सूर्य और चन्द्रमा सम्पूर्ण विश्व को

प्रकाशित करते हैं। उसी प्रकार परमधाम के सुन्दरसाथ से यही अपेक्षा की जाती है कि वे ब्रह्मवाणी के प्रकाश को सारे संसार में फैलायें। इस सम्बन्ध में वेद का यह कथन ध्यान रखने योग्य है कि सौ हाथों से बटोरों और हजार हाथों से लुटाओ।

स्वस्ति पन्थामनुचरेम् सूर्य चन्द्र टसामिव।
शतहस्त समाहर सहस्त्रहस्त संकिर।।

अथर्ववेद ३/२४/५

अपने ब्रह्मज्ञान रूपी धन को यदि तुम हजार हाथों से लुटाओगे, तो संसार की अज्ञानता का अन्धकार तो समाप्त होगा ही, तुम्हारी शोभा भी होगी।

सो तो दिया मैं तुमको, सो खुले ना बिन तुम।
ज्यों मेरी सुध दयों औरों को, तित चले तुमारा हुकम।।

सिनगार २९/२९

ज्ञान की यह विशेषता होती है कि वह जितना व्यय किया जाता है, उतना ही बढ़ता है तथा संचय करने पर घटता है।

व्यये कृते वर्धते एवं नित्यं।

विद्या धनं सर्व धनम् प्रधानम्।।

इस सम्बन्ध में विक्टर हयूगो का कथन है–

As the purse is emptied heart is filled.

जैसे–जैसे थैली खाली होती जाती है, हृदय शान्ति से भरता जाता है।

श्रीमुखवाणी का कथन है–

निज नाम सोई जाहेर हुआ, जाकी सब दुनी राह देखत।
मुक्त देसी ब्रह्मांड को, आए ब्रह्म आतम सत।।

किरंतन ७६/१

जब परमधाम की ब्रह्मसृष्टि इस नश्वर जगत को शाश्वत मुक्ति देने आयी है, तो उसे उसी विशाल हृदय से वाणी के ज्ञान का अमृत संसार में फैलाना होगा। इस कार्य में थोड़ा भी आलस्य या प्रमाद उनकी गरिमा पर प्रश्न चिन्ह खड़ा करेगा। श्री महामति जी का स्पष्ट कथन है–

मोहे दिल में ऐसा आइया, ए जो खेल देख्या ब्रह्मांड।
तो क्या देखी हम दुनियां, जो इनको न करे अखंड।।

किरंतन ९६/१९

धाम धनी की कृपा से यह सारा संसार कर्मों के बन्धन को तोड़कर अखण्ड मुक्ति को प्राप्त होगा।

करनी करम कछु न रहया, धनी बड़े कृपाल।
सो बुध जीएं मारया, जो त्रैलोकी का काल।।

खुलासा १३/११३

संसार को कष्टों से मुक्ति दिलाने के लिए गौतम बुद्ध ने अपने ज्ञान का प्रचार किया। इस कार्य में उन्होंने अपने आठ वर्षीय एकमात्र पुत्र राहुल को अपने ही हाथों से भिक्षुक सन्यासी बना दिया। उनकी पत्नी यशोधरा भी भिक्षुणी बनकर धर्मप्रचार में तल्लीन हो गयी। नालन्दा, तक्षशिला, तथा विक्रमशिला के विश्वविद्यालयों में लाखों बौद्ध भिक्षुक तैयार हुए, जिन्होंने चीन, जापान, श्रीलंका, बर्मा, कम्बोडिया आदि देशों में एवं अफगानिस्तान तथा

मध्य एशिया तक में धर्मप्रचार करके बौद्ध मत का फैलाव किया। इस कार्य में सम्राट अशोक ने अपने पुत्र महेन्द्र तथा पुत्री संघमित्रा को भी भिक्षुक एवं भिक्षुणी का वेश धारण करा दिया।

आज श्रीमुखवाणी का अवतरण हुए लगभग ३०० वर्षों से अधिक समय हो चुका है, लेकिन ब्रह्मवाणी के प्रचार का अब तक हमारा कोई नियोजित कार्यक्रम नहीं रहा है। यह कटु सत्य है कि हुक्म की ओट में हमने आलस्य की नौका पर सवार होकर आरामतलबी एवं भाग्य की चादर ओढ़ रखी है।

वर्तमान समय आत्ममन्थन का है। यदि हम अपने लक्ष्य के प्रति कमर कसकर तैयार नहीं होते हैं, तो हमारे गुनाहों का कोई भी प्रायश्चित नहीं है। हमें श्रीमुखवाणी का यह कथन हमेशा याद रखना होगा–

ताथे हुकम के सिर दोष दे, बैठ न सके मोमिन।

यदि हम सारे विश्व को प्रेम और शान्ति की डोर में बाँधना चाहते हैं, सबको अखण्ड मुक्ति का आनन्द दिलाना चाहते हैं, तो मठों और आश्रमों को राजमहलों की तरह सजाना छोड़कर, खीर, पूड़ी, और चटखारे व्यञ्जनों की तृष्णा छोड़नी होगी। हमें प्रेम और त्याग का जीवन व्यतीत करते हुए श्रीमुखवाणी को सम्पूर्ण विश्व में फैलाने की भीष्म प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी तथा अपना सर्वस्व समर्पण करना पड़ेगा। यदि हम ऐसा कर सकते हैं, तो सफलता हमारे कदम चूमने के लिये तैयार खड़ी है।

सबके लिये एक विद्वान डेनीके के शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है–

"तुम्हारे पास देने के लिये कितना कुछ है। प्रेम का सागर है, हँसी के फूल हैं, और इन दोनों का कोई मूल्य नहीं लगता है। सोचते क्या हो? देना शुरू कर दो। तुम्हारी क्यारी के फूल दिन-प्रतिदिन झड़ रहे हैं, जीर्ण होकर सड़ रहे हैं। उन्हें बाँटते चलो। स्वयं खिलो और दूसरों को खिलाते चलो।"

यह दूसरी किरण पूर्ण हुई।

तृतीय किरण

धार्मिक रहनी

भगवे या श्वेत वस्त्र, दाढ़ी, गले में माला, तथा माथे पर तिलक आदि को देखकर सामान्य व्यक्ति यही मान लेता है कि यह व्यक्ति बहुत धार्मिक है। वस्तुतः किसी वेशभूषा को धारण कर लेने मात्र से ही कोई धार्मिक नहीं कहा जा सकता, बल्कि धर्म के लक्षणों को अपने जीवन में चरितार्थ करने वाला व्यक्ति ही धार्मिक कहलाने के योग्य है। बाह्य वेशभूषा साम्प्रदायिक पहचान तो दे सकती है, लेकिन धर्म के शाश्वत स्वरूप को उजागर नहीं कर सकती।

मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षणों का वर्णन है–

१. धैर्य २. क्षमा ३. दम ४. चोरी न करना ५. शौच

६. इन्द्रियों का निग्रह ७. बुद्धि ८. विद्या ९. सत्य १०. क्रोध न करना।

> धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचं इन्द्रिय निग्रहः।
>
> धीः विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।।
>
> मनुस्मृति

इन लक्षणों को अपने आचरण में उतारने वाला व्यक्ति ही अपने को धार्मिक कह सकता है। संक्षेप में इनकी विवेचना इस प्रकार है –

धैर्य–

सुख और दुख का चक्र दिन तथा रात्रि की भांति बदलता रहता है। एक सामान्य व्यक्ति जहाँ सुख में

उन्मत हो जाता है और दुःख में अधीर, वहीं धर्म के स्वरूप में स्थित व्यक्ति दोनों स्थितियों में सम रहता है। सूर्य उगते समय लाल रंग का होता है तथा डूबते समय भी लाल रंग का ही होता है। महापुरुष भी इसी प्रकार सुख–दुःख में सर्वदा सम अवस्था में रहते हैं। गीता का भी यही कथन है कि सुख–दुःख, लाभ–हानि, जय–पराजय, तथा मान–अपमान में अपने को समान अवस्था में रखना चाहिए।

> सुखे दुःखे समं कृत्वा लाभालाभौजयाजयौ।
>
> गीता २/३८
>
> उदेति सविता ताम्रः ताम्रः एव अस्तमेंति च।
>
> संपतौ च विपत्तौ च महतामेंकरूपता।। नीति वचन

अपने जीव को उस बैल के समान धैर्यशाली बनाना

चाहिए, जो अपने कन्धे पर सारी गाड़ी का बोझ ढोता है, फिर भी उसे सुए की मार खानी पड़ती है।

वाटडी विस्मी गाड़ी भार भरी, धोरीडा मा मूके तारी धूसरी।

किरंतन १३०/१

आशावाद आस्तिकता है, निराशावाद नास्तिकता। प्रियतम परब्रह्म के प्रेम में रहने वाला कभी निराशा का शिकार नहीं होता है। बड़े से बड़े संकट में भी उसे यह आभास होता रहता है कि सर्वशक्तिमान प्रियतम मेरे दिल में बसा हुआ है। वह दुःख की घड़ियों को भी धाम धनी का उपहार समझकर हमेशा मुस्कराता रहता है–

दुख रे प्यारो मेरे प्रान को।

सो मैं छोड़यो क्यों कर जाए, जो मैं लियो है बुलाए।।

किरंतन १६/१

जिस दुःख से सारा संसार भागता है, प्रियतम के प्रेम की प्यासी आत्मा कभी दुख से दुःखी नहीं होती, बल्कि उसी को अपनी आत्म–जाग्रति का आधार मानती है तथा उसे अनमोल मानकर उसी की चाहना करती है।

दुख बिना न होवे जागनी, जो करे कोट उपाए।
धनी जगाए जागहीं, ना तो दुख बिना क्यों ए न जगाए।।
महामत कहे इन दुःख को, मोल न कियो जाए।
लाख बेर सिर दीजिए, तो भी सर भर न आवे ताए।।

किरंतन १७/१४

मायावी कष्टों के तूफान से धैर्यशाली व्यक्ति का हृदय रूपी वृक्ष कभी भी कम्पित नहीं होता है, क्योंकि उसे आनन्द के सागर सच्चिदानन्द परब्रह्म के प्रेम का आश्रय प्राप्त है।

कहे महामत तुम पर मोमिनों, दम दम जो बरतत।
सो सब इस्क हक का, पल पल मेहर करत।।

खिलवत १२/१००

हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि हमारे साथ पल–पल दुःख या सुख जो भी बीत रहा है, उसमें किसी न किसी रूप से धनी की मेहर एवं प्रेम का रस छिपा हुआ है। धर्म के स्वरूप में स्थित रहने वाले ब्रह्ममुनियों, तथा योगेश्वर श्री कृष्ण, सत्यवादी हरीशचन्द्र, ऋषि दयानन्द, आदिशंकराचार्य, एवं गौतम बुद्ध आदि महापुरुषों को कभी भी अधीर होते हुए नहीं देखा गया। ये हमारे प्रेरणा स्रोत हैं। इनके द्वारा धैर्य के दर्शाये हुए मार्ग का अवलम्बन करना हमारा परम कर्त्तव्य है।

क्षमा–

क्षमा अलौकिक गुण है। निर्बल व्यक्ति क्षमा की राह पर नहीं चल सकता। मनुष्य गुणों–अवगुणों का पिटारा होता है। अति दयालु, अति कृपालु वह परब्रह्म क्षमा का अनन्त भण्डार है। क्षमा का आभूषण किसी की महानता में चार चाँद लगा देता है।

क्षमा बड़न को चाहिए, छोटन को उत्पात।
का रहीम हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात।।

भृगु जी द्वारा अशिष्ट व्यवहार करने पर ब्रह्मा जी तथा शंकर जी नाराज हो गये थे, किन्तु भृगु जी द्वारा छाती में लात मारे जाने पर भी विष्णु भगवान की यह कितनी महानता एवं क्षमाशीलता है कि वे भृगु जी के चरण पकड़कर कहने लगे कि मेरी पत्थर जैसी कठोर

छाती से आपके कोमल चरणों में कहीं चोट तो नहीं लगी।

इस प्रकार एक सत्य घटना है कि महाराजा रणजीत सिंह एक बार शहर में सायंकाल भ्रमण कर रहे थे। उनके साथ सुरक्षाकर्मी भी थे। अचानक एक सनसनाता हुआ पत्थर रणजीत सिंह जी के सिर में लगा। पत्थर चलाने वाला एक छोटा सा बालक था। उस बच्चे को पकड़कर राजदरबार में पेश किया गया। सभी लोग यही सम्भावना कर रहे थे कि इस बालक को तो अवश्य ही फाँसी हो जायेगी। पूछे जाने पर बालक ने बताया कि उसने फल तोड़ने के लिए पेड़ पर पत्थर मारा था, जान-बूझकर नहीं। रणजीत सिंह ने उस बालक को स्नेहपूर्वक पुरस्कृत करके विदा किया। मन्त्रियों द्वारा पूछे जाने पर उन्होंने उत्तर दिया कि जब एक पेड़ पत्थर मारने पर

मीठा फल देता है, तो मैं भला उसे कैसे फाँसी दे सकता हूँ।

यदि माया के प्रभाववश सुन्दरसाथ से कोई भूल हो जाती है, तो हमें सहृदयतापूर्वक उसे भूला देने या क्षमा की प्रवृत्ति अपनानी चाहिए। इसी में हमारी शोभा है। धाम धनी के इस कथन को गाँठ बाँध लेना चाहिए–

आप कहियो अपने साथ को, जो तुझे खुले वचन।

सुध तो नहीं कछु साथ को, पर तो भी अपने सजन।।

प्रकास हिंदुस्तानी १६/६

दम–

दम का अर्थ है दमन, अर्थात् मन, चित्त, और इन्द्रियों से विषयों का सेवन न होने देना। अर्थात् अब

तक जो इन्द्रियाँ मायावी विषयों का सेवन कर रही थीं, चित्त विषयों के चिन्तन में लगा हुआ था, तथा मन उनके मनन में तल्लीन था, उसे रोक देना दम (दमन) कहलाता है।

कठोपनिषद् का कथन है कि परमात्मा ने पाँच इन्द्रियों (आँख, कान, नाक, जिह्वा, तथा त्वचा) का निर्माण किया है, जो बाहर के विषयों की ओर ही देखती हैं। अमृतत्व की इच्छा करने वाला कोई धैर्यशाली व्यक्ति ही अन्दर की ओर देखता है।

परांचि खानि।

स्वयं भूं तस्मात्परांग पश्यतिनअन्तरात्मन् व्यतृणत्।

कश्चिदधीरप्रत्यगात्मानम्आवृतचक्षुः अमृतत्वंइच्छन्।।

कठोपनिषद्

विषय का विष काले सर्प के विष से भी अधिक घातक होता है, क्योंकि काले सर्प का काटा हुआ तो एक जन्म में ही मरता है, किन्तु विषयों के अधीन होने वाला तो ८४ लाख योनियों में मृत्यु के वशीभूत हो जाता है तथा विषयों को देखने मात्र से पीड़ा होती है।

एक-एक विषयों का सेवन करने वाले पतंग, हाथी, हिरण, भौंरा, और मछली जब मृत्यु के वशीभूत हो जाते हैं, तो पाँचों इन्द्रियों में पाँचों विषयों का सेवन करने वाले प्रमादी मनुष्य की क्या स्थिति हो सकती है। यह स्पष्ट है कि पतंग दीपक के रूप, हाथी हथिनी के स्पर्श, हिरण मधुर ध्वनि, भौंरा सुगन्धि, तथा मछली जिह्वा के रस के वशीभूत होकर अपना सर्वस्व खो बैठते हैं। मनुस्मृति का कथन है कि समस्त इन्द्रियों में से यदि एक भी इन्द्रिय विषय में फँस जाती है, तो मनुष्य के ज्ञान की क्षीणता

उसी प्रकार होने लगती है जिस प्रकार घड़े में छोटा छिद्र होने पर भी सारा जल बह जाता है। इसलिये विवेकवान् व्यक्ति को चाहिए कि वह अपनी बहिर्मुखी इन्द्रियों को मन सहित वश में करके ब्रह्मज्ञान प्राप्त करे (यही दम है)।

दोषेण तीवो विषय कृष्ण सर्प विषादपि।
विषं निहन्ति भोक्तारं द्रष्टारं चक्षुसाप्यहम्।।
पतंग मतंग कुरंग भृंग मीना हता पंचभिरेव पंच।
एकः प्रमादी स कथं न हन्येत् यः सेवते पञ्चभिरेव पंच।।
इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम्।
तेनास्य क्षरति प्रज्ञा हते पात्रादि वोदकम्।।

वशे कृत्वेन्द्रिय ग्राम संयम्य च मनस्तया।

सर्वान् संसाधयेदर्थान् अक्षिणबन्योणस्तनुन।।

मनुस्मृति २/९९,१००

श्रीमुखवाणी में यह स्पष्ट रूप से बताया है कि ये इन्द्रियाँ किस प्रकार हमें धनी से दूर कर देती हैं।

गुण अंग इंद्री देखो रे चलते, जो उलटे लगे संसार जी।

एही दुस्मन विसेखे अपने, सो करत हैं सिर पर मार जी।।

प्रकास हिंदुस्तानी ३०/२६

यदि हमारे अन्तःकरण (अंग) तथा इन्द्रियों में विषयों के सुख की प्रवृत्ति हो जाती है , तो इनका व्यवहार शत्रु की तरह हो जाता है, जो हमें धनी से मिलने नहीं देता।

तुम स्याने मेरे साथ जी, जिन रहो विखे रस लाग।

पांऊ पकड़ कहे इंद्रावती, उठ खड़े रहो जाग।।

प्रकास हिंदुस्तानी १७/२१

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे सुन्दरसाथ जी! आप तो सयाने सुजान हो। माया के झूठे विषयों के रस में न फँसो। यह बात मैं तुम्हारे पाँव पकड़ के कह रही हूँ। तुम इन विषयों की तृष्णा छोड़कर धनी को अपने दिल में बसाओ तथा अपनी आत्मा को जाग्रत करो।

इन्द्रियों के विषयों में फँसने वाला व्यक्ति कदापि धार्मिक नहीं कहला सकता, भले ही उसकी विशिष्ट वेशभूषा क्यों न हो, शिष्यों का समूह उसके पीछे क्यों न चलता हो, और समाज में वह बाह्य रूप से कितना भी प्रभावशाली क्यों न हो।

अस्तेय–

मन, वाणी, तथा कर्म से किसी के धन की इच्छा न करना ही अस्तेय है। किसी के धन की अनाधिकार चेष्टा ही सभी विवादों का कारण है। यह आम धारणा है कि "जर, जोरु, तथा जमीन" के कारण सारी लड़ाइयाँ होती हैं। युद्ध की सामग्री तैयार करने के लिये सारे विश्व में जितना धन खर्च होता है, उतना खर्च यदि मानवता के कल्याण में खर्च हो तो संसार का नक्शा कुछ और ही हो जाये, किन्तु परद्रव्य हरण (स्तेय) की दुर्भावना ने सारी दुनिया को कटुता, द्वेष, तथा कलह की अग्नि में झोंक रखा है। इसी (स्तेय) की प्रवृत्ति बढ़ने से परिवार टूटता है, समाज टूटता है, धार्मिक संस्थाएँ पतन की कगार पर पहुँच जाती है तथा राष्ट्र भी छिन्न–भिन्न हो जाता है।

आज चारों ओर गरीबी का रोना रोया जाता है।

प्रत्येक सरकार "गरीबी हटाओ" का नारा देती है, लेकिन परिणाम शून्य ही होता है। धर्म से रहित कोई भी समाज भौतिक या आध्यात्मिक उन्नति कदापि नहीं कर सकता।

धर्मग्रन्थों का कथन है कि "धर्मो रक्षति रक्षितः" अर्थात् जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म छतरी के समान उसकी रक्षा करता है, लेकिन जो धर्म का विध्वंस करने का प्रयास करते है, धर्म ही उनका नाश कर देता है।

सम्पूर्ण मानव समाज को गरीबी से उबारने का मार्ग धर्म के शाश्वत सत्य सिद्धान्तों का पालन करने में है। योग दर्शन में कहा गया है कि यदि मनुष्य मन , वाणी, तथा कर्म से अस्तेय (चोरी न करना) में प्रतिष्ठित् हो जाये, तो उसे सभी रत्नों की प्राप्ति स्वतः ही हो जायेगी। आज भारतवर्ष गरीब इसलिये है कि यहाँ मन्त्री से लेकर

सामान्य मजदूर तक किसी न किसी रूप में चोरी (स्तेय) में लिप्त हैं। जिस दिन हमारे देश के लोग चोरी (स्तेय) को महापाप समझकर त्याग देंगे, उसी दिन देश धन-धान्य से परिपूर्ण हो जायेगा।

मनसा वाचा कर्मणा परद्रव्येषु निस्पृहः।

अस्तेयमिति सम्प्रोक्तं ऋषिभिस्तत्वदर्शिभिः।। यो. सं.

अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्। यो. द. २/३९

तेन व्यक्तेन भुञ्जीथाः मागृधः कस्यस्विद्धनम्।

यजुर्वेद ४०/१

परमधाम की ब्रह्मसृष्टि इस माया का खेल देखने आयी है। उसके लिये यह संसार "गोविन्द भेड़ा" भूत मण्डल है। इसकी किसी भी वस्तु से आकर्षित होकर स्वप्न में भी चोरी कर्म (स्तेय) महापाप मानकर नहीं

करना चाहिए–

तुम आइयां छल देखने, भिल गइयां माहें छल।

छल को छल न लागहीं, ओ लहरी ओ जल।।

सनंध १२/११

माया के जीवों में एक से बढ़कर एक महापुरुष हो चुके हैं जिन्होंने धर्म के दशों लक्षणों का बहुतांश में पालन किया है, तो सुन्दरसाथ से तो सर्वांश (पूर्ण रूप से) पालन करने की अपेक्षा की जाती है। इसलिये बीतक साहिब में वर्णन है कि तारतम ज्ञान प्रदान करते समय सुन्दरसाथ से ये पाँच प्रतिज्ञायें करायी जाती थीं और ये आज भी करायी जाती हैं–

पीना तमाखू छोड़ देओ, और मांस मछली सब।

शराब और सब कैफ, परदारा चोरी न कब।।

बीतक २७/२९

आज प्रायः अधिकतर मन्दिरों तथा आश्रमों में स्तेय (धार्मिक सम्पत्ति का व्यक्तिगत उपयोग) की प्रवृत्ति जोरों पर है, जिसके कारण हर जगह विवाद की स्थिति है। परमहंस महाराज श्री रामरतन दास जी का कथन है कि "आश्रमों और मन्दिर की सम्पत्ति को पचाने के लिये लोहे के दाँत चाहिए।" वस्तुतः आश्रम और मन्दिरों की सम्पत्ति का व्यक्तिगत उपयोग महापाप है। जिन मन्दिरों और आश्रमों से समाज प्रेम, शान्ति, और ज्ञान की आशा करता है, वहाँ कटुता के सिवाय अन्य कुछ भी नजर नहीं आता है। समाज से प्रेम, संवेदनशीलता, ज्ञान, समरूपता जैसी चीजें छू-मन्तर हो गयी हैं।

सुन्दरसाथ से यही आशा की जाती है कि वे अस्तेय में शत -प्रतिशत प्रतिष्ठित हों, ताकि

आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त हो सके।

शौच (पवित्रता)–

बाह्य और आन्तरिक पवित्रता धर्म का प्रमुख अंग हैं। बाह्य पवित्रता का सम्बन्ध स्थूल शरीर से है तथा आन्तरिक पवित्रता का सम्बन्ध अन्तःकरण की शुद्धता से है। यह सर्वांश सत्य है कि अन्तःकरण को पवित्र किये बिना आध्यात्मिक मन्जिल को कदापि प्राप्त नहीं किया जा सकता।

किन्तु हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि अन्तःकरण की पवित्रता के सोपान (सीढ़ी) में बाह्य पवित्रता एक कदम है। यदि शरीर की शुद्धि (स्नान, नियमित मल–मूत्र के त्याग आदि के द्वारा) न की जाये

तथा वस्त्र एवं निवास आदि को भी गन्दा रखा जाये, तो मन स्वाभाविक रूप से चञ्चल रहेगा। वैसी स्थिति में ध्यान, समाधि की प्रक्रिया भी पूरी नहीं की जा सकती।

अन्तःकरण की शुद्धि ध्यान तथा शुद्ध आहार के बिना सम्भव नहीं, किन्तु ध्यान के लिये बाह्य शुद्धि का होना आवश्यक है। किन्तु बाह्य शुद्धि को सब कुछ मान लेना मात्र कर्मकाण्ड और अज्ञानता के अन्धकार को बढ़ावा देना है। इसी बाह्य शुद्धि के नाम पर छूतछात का प्रचलन चल पड़ा, जिसने समाज के एक बड़े वर्ग (स्त्री– शुद्र) को अपमान का घूँट पीने के लिए मजबूर किया, जिसका दुष्परिणाम है– भारतवर्ष को हजार वर्ष की गुलामी एवं धर्मान्तरण का भयावह रूप।

हमें यह ध्यान रखना होगा कि बाह्य पवित्रता के नाम पर अस्पृश्यता मानवता के नाम पर कलंक है। गीता

का कथन है कि विद्या और विनम्रता से सम्पन्न ब्राह्मण में, गाय में, कुत्ते में, हाथी में, और चाण्डाल में, जो सर्वत्र एक समान चेतना का अनुभव करता है, वही पण्डित है न कि जन्म जात।

विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैप श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।। गीता

इस सम्बन्ध में एक घटना का वर्णन अति सार्थक है–

एक बार वाराणसी में आदिशंकराचार्य जी प्रातःकाल गँगा स्नान कर अपने शिष्यों के साथ आ रहे थे। सामने से एक चाण्डाल भी कुछ कुत्तों के साथ उपस्थित हो गया। शंकराचार्य जी ने उस चाण्डाल को मार्ग छोड़ने के लिए कहा। इस पर चाण्डाल कहता है– "आप किसको

हटने के लिए कह रहे हैं– शरीर को या आत्मा को? शरीर तो जड़ है, वह कैसे हट सकता है। आत्मा तत्व तो एकरस है। क्या गँगाजल में प्रतिबिम्बित सूर्य और शराब में प्रतिबिम्बित सूर्य में कोई अन्तर है ? 'एकमेव अद्वितीयं' का उद्घोष करने वाले आपके अन्दर इस प्रकार की भेद–दृष्टि क्यों है।" शंकराचार्य जी इस कथन पर निरुत्तर हो गये और उन्होंने अपनी भूल स्वीकार की।

बाह्य स्वच्छता के नाम पर होने वाला श्रृंगार मनुष्य को पतन की राह पर ले जाता है। आज विभिन्न सौन्दर्य प्रसाधनों (क्रीम, लिपिस्टिक आदि) को तैयार करने में बेगुनाह जानवरों का वध किया जाता है। अपने होठों पर लालिमा दिखाने के लिये भोले–भाले पशुओं के रक्त मिश्रित लिपस्टिक का प्रयोग सुन्दरसाथ के लिये कभी

भी ग्राहय नहीं होना चाहिए। सच्चा श्रृंगार कैसा होना चाहिए, इस सम्बन्ध में एक कवि का कथन है–

क्या रखा है इन चमकदार, कटियों पटियों में झूमर में।
है शीशफूल तो यह सिर का, सिर झुके बड़ों के आदर में।।
बेंदी है तेज भाल का, तो लज्जा आँखों का काजल है।
शुद्धता नाक की बेसर है, दाँतों की चोब स्वच्छता है।।

मनुस्मृति में कहा गया है कि जल से शरीर शुद्ध होता है। सत्य का पालन करने से मन शुद्ध होता है। विद्या और तप से जीव शुद्ध होता है, तथा ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है। वस्तुतः शौच का यही वास्तविक स्वरूप है। बाह्य पवित्रता की अपेक्षा आन्तरिक पवित्रता अधिक कल्याणकारी है।

अदभिः गात्राणि शुध्यन्ति, मनः सत्यने शुध्यति।
विद्या तपोभ्याम् भूतात्मा, बुद्धिः ज्ञानेन शुध्यति।।

मनुस्मृति

इस सम्बन्ध में श्री जी कहते हैं–

जो मांहे निरमल बाहेर दे न देखाई, वाको पारब्रह्म सो पेहेचान।
महामत कहे संगत कर वाकी, कर वाही सों गोष्ट ग्यान।।

किरंतन २६/७

यह तो निश्चित है कि जितना ध्यान हम बाहरी शरीर को शुद्ध करने पर देते हैं, उतना यदि दिल को पवित्र कर लें, तो हमारे प्रियतम अक्षरातीत आधे पल के लिये भी हमसे दूर नहीं हैं –

अन्दर नाहीं निरमल, फेर फेर नहावें बाहेर।

कर देखाई कोट बेर, तोहे ना मिले करतार।।

जैसा बाहेर होत है, जो होए ऐसा दिल।

तो अधखिन पिउ न्यारा नहीं, मांहें रहे हिल मिल।।

किरंतन १३२/१,४

ब्रह्ममुनि की सच्ची पहचान यही है कि उसका दिल स्फटिक मणि की तरह पूर्णतया शुद्ध हो, उसमें धनी के प्रति जरा भी संशय न हो, तथा नाम मात्र का भी आडम्बर न हो। उसे श्री राज जी के बिना सब कुछ व्यर्थ लगता हो।

पाक दिल पाक रूह, जामें जरा न सक।

जाको ऊपर ना डिंभक, एक जरा न रखे बिना हक।।

सिनगार १/४२

सुन्दरसाथ से तो यही आशा की जाती है कि वे पवित्रता के नाम पर छूतछात के अज्ञानमूलक विचारों को कभी भी अपने पास नहीं फटकने देंगे। यदि सद्गुरू धनी श्री देवचन्द्र जी खोजी बाई जैसी गरीब एवं मुसलमान विधवा को रसोईघर की सेवा में रखवा सकते हैं, तो शुद्धता के नाम पर "स्वपाकी" होने का प्रपञ्च क्यों? बाह्य दृष्टि की अपेक्षा हमें अपनी आत्मिक दृष्टि से इन तथ्यों पर विचार करना होगा। इसी में सच्चा सुख है।

इन्द्री निग्रह–

विषयों में फँसी हुई इन्द्रियों को विवेकपूर्वक रोकना ही इन्द्री निग्रह है। इन इन्द्रियों द्वारा कितना ही मायावी

सुखों का उपभोग क्यों न किया जाये, मन शान्त नहीं होता, बल्कि तृष्णा पल-पल बढ़ती ही जाती है।

भर्तृहरि ने कहा है कि चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं, शिर के बाल सफेद हो जाते हैं, शरीर के सभी अंग शिथिल हो जाते हैं, फिर भी तृष्णा बढ़ती ही जाती है।

वलिभिः मुखमाक्रान्तं पलितैः अंकितं शिरः।
गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते।।

भर्तृहरि शतक श्लोक ८

वस्तुतः विवेकपूर्वक इन्द्रियों को विषयों से रोक देना ही तप है। इसके लिये हठपूर्वक दमन का मार्ग नहीं अपनाना चाहिए, बल्कि शुद्ध आहार-विहार एवं ध्यान-साधना द्वारा मन-बुद्धि को सात्विक बनाकर विवेकपूर्वक इन्द्रियों को विषयों से दूर करना चाहिए। यदि मन, चित्त,

बुद्धि में विवेक दृष्टि नहीं है, तो जबरन किया हुआ दमन विस्फोट का कारण बनता है। सम्पूर्ण रसों की उद्भव कर्ती रसना (जिह्वा) है। यदि जिह्वा को ही वश में कर लिया जाये, तो मन एवं सभी इन्द्रियों पर अधिकार हो जाता है।

छान्दोग्य उपनिषद् का कथन है कि "आहार शुद्धौ सत्व शुद्धिः" अर्थात् आहार की शुद्धता से ही बुद्धि की शुद्धता है। बुद्धि के निर्मल हो जाने पर चित्त एवं मन भी निर्मल हो जाते हैं। मन ही इन्द्रियों का राजा है। मन के निर्मल होते ही इन्द्रियाँ विषयों से स्वतः दूर हो जाती हैं। यही इन्द्रिय निग्रह है और इसे ही शमन कहते हैं।

शुद्ध सात्विक आहार ही मन की शुद्धता का प्रमुख कारण है। रजोगुणी एवं तमोगुणी आहार से मन, चित्त, बुद्धि सभी विकारग्रस्त हो जाते हैं। गीता का कथन है कि

"कामः एषः क्रोधः रजोगुण समुदभवः" अर्थात् रजोगुण से काम और क्रोध की उत्पत्ति होती है। रजोगुणी भोजन भी मात्रा से अधिक होने पर तामसिक हो जाता है।

गीता के अनुसार राजसी एवं तामसिक आहार इस प्रकार हैं–

कड़वे, खट्टे, बहुत अधिक नमकीन, बहुत गरम, तीखे (मिर्च आदि), रूखे, तथा दाहकारक पदार्थ रजोगुणी व्यक्ति को प्रिय होते हैं, जो दुःख, शोक, तथा भय प्रदान करने वाले होते हैं।

जिनका रस जल गया हो, दुर्गन्धित, बासी, सड़े–गले, तथा जूठे भोजन तामसिक व्यक्ति को प्रिय होते हैं।

कटु अम्ल लवण अति उष्ण तीक्ष्ण रुक्ष विदाहिनः।

आहारा राजसस्येष्टा दुःख शोकाभयप्रदाः।।

यातयामं गतरसं पूर्ति च पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेंध्यं भोजनं तामसं प्रियं।।

गीता १७/९,१०

माँस, शराब, लहसुन, प्याज, तथा सभी प्रकार के नशीले पदार्थों में दुर्गन्ध होती है। इनके सेवन से बुद्धि तामसिक हो जाती है। वेद में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि माँस नहीं खाना चाहिए।

मांस नाश्नीयात्। अथर्ववेद १०/६/९

यद्यपि औषधीय दृष्टि से लहसुन, प्याज गुणकारी हैं, किन्तु तामसिक होने से अध्यात्म की राह पर चलने वालों के लिए त्याज्य हैं। इसी प्रकार चाय और कॉफी भी हल्के विष हैं। इनके सेवन से मन में रजोगुण का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। चाय में सात प्रकार के विष

होते हैं, जिनमें निकोटिन प्रमुख रूप से होता है। कॉफी में कैफीन होता है। ये सभी विष हृदय, फेफड़े, गुर्दे, तथा मस्तिष्क पर बुरा असर डालते हैं। उत्तेजक पदार्थों का सेवन करने वाला व्यक्ति ध्यान–समाधि का अधिकारी नहीं हो सकता।

इन्द्रियों के झूठे सुखों में लिप्त हो जाने वाला व्यक्ति अशान्ति की ज्वाला में जलने लगता है। शरीर रोगों का जहाँ घर बन जाता है, वहीं परब्रह्म का साक्षात्कार भी नहीं हो पाता।

इन इन्द्रियन की मैं क्या कहूं, ए तो अवगुन ही की काया।
इनसे देखूं क्यों साहेब, एही भई आड़ी माया।।

किरंतन ४१/४

वस्तुतः कोई किसी का शत्रु या मित्र नहीं होता। शत्रु

और मित्र तो व्यवहार से ही पैदा होता है। बाहर के शत्रुओं को तो जीतना सरल है, किन्तु अन्दर के छः शत्रुओं (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, तथा मत्सर अर्थात् ईर्ष्या) को जीतना बहुत कठिन होता है और इनको जीते बिना अध्यात्म की राह पर चला भी नहीं जा सकता।

इनों का होसी सिताब, नजीक खुदाए के हिसाब।
सब बंदगी एही मोमिन, जो अंदर के मारे दुस्मन।।

बड़ा कयामतनामा ३/१७

धनी को पाने के लिये संयम का मार्ग अपनाते हुए अपनी इन्द्रियों की चाहनाओं को समाप्त करना पड़ेगा। इन्द्रियों को भोगों में डुबोकर प्रियतम परब्रह्म से प्रेम होना सम्भव नहीं है–

नफसों से करो सबर, मारो हिरस हवा परहेज कर।
दिल से दृढ़ करो सबर, साबित बंदगी मौला पर।।

बड़ा कयामतनामा ३/२२

जब तक मन-इन्द्रियों के विकार दूर नहीं होते, तब तक हृदय भी निरमल नहीं होता और न धनी का इश्क ही आ पाता है। प्रत्येक सुन्दरसाथ के लिये यह परीक्षा की घड़ी है कि कौन अपने हृदय को कितना निर्मल कर पाता है और धनी का प्रेम ले पाता है-

कहे महामत परीक्षा तिनकी, जो पेहेले हुए निरमल।
छूटे विकार सब अंग के, आए पोहोंचे इस्क अव्वल।

किरंतन ९२/१६

विषय का विष काले सर्प के विष से भी अधिक भयंकर होता है क्योंकि विषय की तृष्णा के कारण ही

जीव को ८४ लाख योनियों में भटकना पड़ता है। इन्द्रियों को मायावी सुखों से हटाकर धनी की तरफ लगाये बिना कोई भी जाग्रत नहीं हो सकता। मनोविकार ही सबसे बड़े शत्रु हैं। इनसे युद्ध करना ही पड़ेगा।

तुम करो लड़ाई इनसों, मार टूक करो दुस्मन जी।
फेर वाको उलटाए चेतन करो, ज्यों होवे तुमारे सजन जी।।

प्रकास हिंदुस्तानी ३०/२७

इन्द्रियों के विषय भोगो में पड़ा हुआ व्यक्ति अज्ञानता और दुःख के घने अन्धकार में भटकता रहता है-

विखे स्वाद जिन लग्यो, सो लिये इन्द्रियों घेर।
जो एक साइत साथ आगे चल्या, पीछे पड़े मांहे करन अंधेर।।

किरंतन ८८/१३

बुद्धि–

बुद्धि की श्रेष्ठता से ही मानव योनि सभी योनियों में श्रेष्ठ मानी जाती है। आज का मानव बुद्धि के बल से आकाश में उड़ता है, जल के भीतर (पनडुब्बी द्वारा) कई–कई माह तक रह लेता है। चन्द्रमा जैसे उपग्रह तक पहुँच गया है। वस्तुतः जिसके पास बुद्धि है, वही बलवान होता है।

आध्यात्मिक क्षेत्र में शुद्ध बुद्धि के बिना तो कुछ भी नहीं हो सकता। योग दर्शन में कहा गया है कि बुद्धि तथा जीव के शुद्ध हो जाने पर मोक्ष तत्व की प्राप्ति होती है। शुद्ध बुद्धि के लिये पूर्ण सात्विक आहार , ध्यान, तथा शुद्ध ज्ञान की आवश्यकता होती है। समाधि की अवस्था में जिस ऋतम्भरा प्रज्ञा (सत्य को ग्रहण करने वाली यथार्थ बुद्धि) की प्राप्ति होती है, उसके द्वारा ब्रह्म

साक्षात्कार का मार्ग सरल हो जाता है। बुद्धि के शुद्ध होने पर चित्त तथा मन भी शुद्ध हो जाते हैं, जिससे किसी प्रकार के मनोविकार के प्रकट होने की सम्भावना नहीं होती है।

काम विकार की उत्पत्ति संकल्प से ही होती है। "संकल्पात् जायते कामः।" काम विकार पर विजय प्राप्त करने के लिये काम के संकल्प को ही हटाना होगा (संकल्पस्य त्यागो सुलभो मतः), यही सरल मार्ग है। यदि सात्विक भोजन तथा ध्यान द्वारा बुद्धि शुद्ध है, तो चित्त के बुरे संस्कारों के क्षय हो जाने से मन में बुरे संकल्प उठते ही नहीं हैं। जिस काम विकार को बड़े-बड़े तपस्वी पूरी तरह नहीं जीत पाये हैं, वह काम विकार बुद्धि के शुद्ध होते ही छू-मन्तर (समाप्त) हो जाता है।

बुद्धि के द्वारा ही ज्ञान का ग्रहण होता है। यदि उस

दिन की कल्पना की जाये, जब मनुष्य के पास बुद्धि न हो, तो मनुष्य और पशु के क्रियाकलाप में कोई विशेष अन्तर नहीं रह जायेगा। शुद्ध बुद्धि द्वारा ही सत्य–असत्य का निर्णय होता है, जिससे मानव धर्म मार्ग पर चलते हुए परब्रह्म को प्राप्त कर सकता है।

वस्तुतः शुद्ध बुद्धि का धारण करना भी धार्मिकता का लक्षण है। बुद्धिविहीन व्यक्ति जब स्वाध्याय तथा सत्संग का लाभ नहीं ले सकता, तो ऐसी स्थिति में आध्यात्मिक उन्नति की कल्पना व्यर्थ है। जाग्रत बुद्धि द्वारा ही परब्रह्म की पहचान होती है।

साथ मलीने सांभलो, जागी करो विचार।

जेणे अजवालूं आ करयूं, परखो पुरुख ए पार।।

रास १/४६

इस मायावी ब्रह्माण्ड में सबकी बुद्धि स्वप्नमयी है। परमधाम की निज बुद्धि एवं जाग्रत बुद्धि का ज्ञान प्राप्त करने वाले सुन्दरसाथ धन्य हैं, किन्तु उनसे यही आशा की जाती है कि वे अपने को उस कसौटी पर खरा सिद्ध करें, जिससे उनके हृदय में धनी के हुक्म से जाग्रत बुद्धि एवं निज बुद्धि का प्रकाश हो जाये।

निज बुध आवे अग्यायें, तोलों न छूटे मोह।
आतम तो अंधेर में, सो बुध बिना बल न होए।।

कलस हिंदुस्तानी १/३६

युगल स्वरूप को चित्त में बसाने पर ही हम जाग्रत बुद्धि को अपने हृदय में स्थापित करा पायेंगे, जो हमारे जीवन का एक विशिष्ट लक्ष्य होना चाहिए।

विद्या (ब्रह्मविद्या)–

विद्या दो प्रकार की होती है– परा और अपरा। परा विद्या (ब्रह्म विद्या) से उस अविनाशी ब्रह्म को जाना जाता है, जबकि अपरा विद्या से लौकिक सुखों की प्राप्ति होती है। मानव जीवन को सुखी बनाने के लिये दोनों विद्याओं की अपनी–अपनी उपयोगिता है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार– जिससे लौकिक सुख हो और मोक्ष (अखण्ड मुक्ति) की प्राप्ति हो, उसे धर्म कहते हैं।

विद्या से रहित व्यक्ति कभी धार्मिक नहीं हो सकता, क्योंकि न तो वह संसार का सुख प्राप्त कर सकता है और न अक्षरातीत परब्रह्म को ही जान सकता है। ब्रह्मवाणी (श्री कुलजम स्वरूप) से ही परब्रह्म के यथार्थ स्वरूप को जाना जाता है। जिनके पास यह ब्रह्मवाणी नहीं है, वे आज भी अज्ञानता के अन्धकार में भटक रहे

हैं। उन्हीं के लिये श्री जी कहते हैं–

कोई बढ़ाओ कोई मुड़ाओ, कोई खैंच काढ़ो केस।
जोलो आतम न ओलखी, कहा होए धरे बहु भेस।।
सात बेर अस्नान करो, पेहेनो ऊंन उत्तम कामल।
उपजो उत्तम जात में, पर जीवड़ा न छोड़े बल।।
सौ माला वाओ गले में, द्वादश करो दस बेर।
जोलों प्रेम न उपजे पिऊ सों, तोलों मन न छोड़े फेर।।

किरंतन १४/२,४,५

वस्तुतः ब्रह्मविद्या द्वारा आत्म तत्व को जाना जाता है तथा प्रेम लक्षणा भक्ति द्वारा साक्षात्कार किया जाता है। ब्रह्मविद्या से रहित व्यक्ति चाहे कितनी ही लम्बी जटायें क्यों न बढ़ा ले, सिर के बालों को या तो मुड़वाता

रहे या उखाड़ता रहे, प्रतिदिन सात–सात बार स्नान करता रहे, कम्बल या ऊन के पवित्र आसन पर ही बैठा करे, गले में सौ मालायें भी पहनता रहे, फिर भी न तो उसका मन वश में हो सकता है और न उसे परब्रह्म का साक्षात्कार हो सकता है। केवल बाह्य वेशभूषा से अध्यात्म का कोई सम्बन्ध नहीं है।

यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः।

वैशेषिक दर्शन १/१/२

किन एक बूंद न पाइया, रसना भी वचन।

ब्रह्मांड धनियो देखिया, जो कहावें त्रैगुन।।

प्रकास हिंदुस्तानी ३१/१०१

इस ब्रह्माण्ड के स्वामी कहे जाने वाले ब्रह्मा, विष्णु, तथा शिव जी भी बेहद का रस पाने के लिये तरसते रहे,

लेकिन उन्हें एक बूँद भी न मिल सकी।

हकें इलम ऐसा दिया, जो चौदे तबको नाहिं।

और नाहीं नूर मकान में, सो दिया मोहे सपने मांहिं।।

खिलवत १०/३३

अनादि परमधाम का जो ज्ञान चौदह लोक के ब्रह्माण्डों तथा बेहद के अन्दर भी नहीं था, धाम धनी ने हमें बहुत सहजता से इस पञ्चभौतिक तन में दिया है। यदि हम अपने को धार्मिक कहलाने का दावा रखते हैं, तो हमें दिन-रात ब्रह्मविद्या (ब्रह्मवाणी) श्रीमुख तारतम वाणी के चिन्तन में लगे रहना चाहिए।

ते माटे तमें सुण जो साथ, एक कहूं अनुपम बात।

चरणा सुण जो दिन ने रात, आपण ने त्रुठा प्राणनाथ।।

रास २/१७

यदि हमें धनी पर फिदा होना है, तो दिन–रात ब्रह्मवाणी का चिन्तन–मनन करना ही होगा। यह ब्रह्मविद्या ही हमारे लौकिक कष्टों को दूर कर परब्रह्म के प्रेम में डुबोयेगी तथा जीवन को ब्रह्मानन्द से भर देगी।

सत्य–

सत्य ही ब्रह्म है, सत्य ही जीवन है, और सत्य ही धर्म का आधार है। तीनों लोकों में सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है और झूठ के बराबर पाप नहीं है। कबीर जी ने कहा है–

सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।

जाके हिरदे सांच है, ताके हिरदे आप।।

झूठ वर्तमान में कितना ही शक्तिशाली क्यों न प्रतीत

होता हो, अन्ततोगत्वा सत्य की ही विजय होती है। सत्य का पालन ही मोक्ष मार्ग का विस्तार करने वाला है।

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।

मुण्डकोपनिषद

योग दर्शन का कथन है कि यदि मन, वाणी, और कर्म से सत्य में स्थित हो जाया जाये, तो वाणी में अमोघता आ जाती है, अर्थात् मुख से कुछ भी कहने पर वह सत्य हो जाता है।

नहि सत्यात् परो धर्मः त्रिषु लोकेषु विद्यते।

मिथ्या समं नास्ति पापं तस्मात् सत्यं समाचरेत्।।

सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफल आश्रयत्वम्।।

योग दर्शन २/३६

यजुर्वेद में कहा गया है कि मैं असत्य को छोड़कर सत्य को प्राप्त होऊँ।

अहमनृतात्सत्यमुपैमि।	यजुर्वेद १/५

यदि मनुष्य सच्चे हृदय से सत्य का पालन करे, तो उसके जीवन की सभी समस्याओं का समाधान हो जाता है, किन्तु अपवाद में इतना कहा जा सकता है कि यदि थोड़ा सा झूठ बोलने से किसी महान व्यक्ति को मृत्यु से बचाया जा सकता है या राष्ट्र की रक्षा की जा सकती है, तो निष्काम भाव से परार्थ या राष्ट्र रक्षा के लिये सत्य में कुछ परिवर्तन किया जा सकता है। वर्तमान समय में व्यवसाय या अन्य कार्यों में बात–बात में झूठ बोलने की जो प्रवृत्ति है, उससे क्षणिक लाभ तो अवश्य दिखता है, लेकिन सारे समाज के लिये विनाश की खाई खुदती नजर आ रही है।

महाराजा हरिश्चन्द्र का सत्य–प्रेम जगजाहिर है। उन्होंने सत्य की रक्षा के लिये राज–पाट छोड़ा, अपनी पत्नी एवं एकमात्र पुत्र को भी बेच दिया, तथा स्वयं चाण्डाल की नौकरी भी की। इसलिये तो यह दोहा प्रसिद्ध है–

चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार।

पर दृढ़ श्री हरिश्चन्द्र का, टरै न सत्य विचार।।

प्रायः यह माना जाता है कि सत्य के प्रभाव से महाराज हरिश्चन्द्र जी को वैकुण्ठ की प्राप्ति हुई। परमधाम से आने का दावा करने वाला सुन्दरसाथ वैकुण्ठ और बेहद को तो कुछ भी नहीं समझता, किन्तु व्यावहारिक रूप से उसे झूठ बोलने में झिझक नहीं होती। ऐसा करने से तो ब्रह्ममुनि कहलाने की गरिमा ही नष्ट हो रही है। झूठ

बोलने के अभ्यस्त सुन्दरसाथ ने यह मान्यता गढ़ ली है कि हमारे मूल तन परमधाम में हैं। यहाँ के पाप-पुण्य का परमधाम के उन तनों से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि यह कार्य तो जीव करता है। हमारी आत्मा तो जीव पर बैठकर मात्र खेल को देख रही है।

इस मिथ्या धारणा को हटाने के लिये सुन्दरसाथ का यह उत्तरदायित्व है कि श्रीमुखवाणी के कथनों को ध्यान से देखें एवं अपनी अन्तरात्मा की आवाज पहचानें। श्रीमुखवाणी का कथन है-

सांचा री साहेब सांच सों पाइए, सांच को सांच है प्यारा।

किरंतन ८/७

परब्रह्म सत्य है और उसे सत्य प्यारा है, इसलिये उसे मात्र सत्य (ज्ञान, प्रेम) से ही पाया जा सकता है।

स्वप्न के मिथ्या ज्ञान या आडम्बरपूर्ण दिखावे की भक्ति से उसे नहीं पाया जा सकता।

यह सत्य है कि आत्मा मात्र दृष्टा है और शुभ – अशुभ सारे कार्य जीव ही करता है, किन्तु जब तारतम्य ज्ञान प्राप्त हो जाने पर जीव भी आत्मा का भाव लेकर अँगना भाव से धनी को रिझाने लगता है, तो उसके द्वारा किये हुए अशुभ कर्मों का गुनाह हमेशा–हमेशा के लिये परमधाम में अखण्ड होने लगता है, क्योंकि हँसी सभी की होनी है।

हांसी न होसी हुकम पर, है हांसी रुहों पर।

जाको गुनाह पोहोंच्या खिलवतें, कहे कलाम अल्ला यों कर।।

सिनगार २७/१५

हमारी सुरता के परात्म में पहुँचने से पहले ही हमारे

गुनाह वहाँ पहुँच रहे हैं। तभी तो श्री महामति जी ने कहा है-

और हांसी सब सहेली, पर ए हांसी सही न जाय।

सिनगार २३/२७

गुनाह से बचने के लिये हुक्म या सुरता की ओट लेना व्यर्थ है, क्योंकि धनी ने कहा है -

ताथें हुकम के सिर दोष दे, बैठ न सकें मोमिन।

अर्स दिल खुदी से क्यों डरें, लिए हक इलम रोसन।।

सिनगार २७/१९

आशा है सुन्दरसाथ श्रीमुखवाणी के कथनों को अक्षरातीत का कथन मानकर असत्य के त्याग में संलग्न रहेंगे।

क्रोध न करना–

क्रोध मानव का ऐसा शत्रु है, जो उसे शारीरिक और मानसिक दोनों रूप से पीड़ा देता है। एक बार क्रोधित मनुष्य के शरीर में इतना अधिक विष पैदा हो जाता है कि यदि उसे तुरन्त इन्जेक्शन के रूप में लेकर किसी छोटे जानवर को लगा दिया जाये, तो उस जानवर की मृत्यु हो जायेगी। क्रोध के विषय में धर्मग्रन्थों में कहा गया है कि क्रोध के समान मनुष्य का कोई शत्रु नहीं है, क्योंकि यह मनुष्य के धैर्य, शास्त्र ज्ञान, और उसकी सारी अच्छाइयों को नष्ट कर डालता है।

क्रोध नाशयते धैर्य, क्रोधो नाशयते श्रुतम्।

क्रोधो नाशयते सर्वं, नास्ति क्रोध समो रिपुः।।

मा. क्रुधः। अथर्व ११/२/२०

गीता में क्रोध को नरक का द्वार तो कहा ही गया है, अथर्ववेद में स्पष्ट रूप से क्रोध न करने का आदेश है। क्रोधी मनुष्य जहाँ अनेक विवादों को जन्म देता है, अनेक व्यक्तियों को अपनी कटु वाणी से दुःखी करता है, वहीं स्वयं भी अपनी मानसिक शान्ति खोकर दुःखी होता है।

क्रोध से शारीरिक, मानसिक, तथा आत्मिक उन्नति का द्वार बन्द हो जाता है। बड़े से बड़े ज्ञानी या तपस्वी व्यक्ति भी क्रोध का शिकार हो जाने पर अपनी गरिमा को कलंकित कर लेते हैं। अपनी धार्मिकता का अभियान करने वालों को स्वप्न में भी क्रोध नहीं करना चाहिए।

ब्रह्मविद्या को अच्छी तरह आत्मसात् करने वाला व्यक्ति स्वभावतः विनम्र होता है। इसलिये नीति ग्रन्थों में कहा गया है कि "विद्या ददाति विनयं" अर्थात् विद्या

विनम्रता देती है, किन्तु विद्या कौन है? "सा विद्या या विमुक्तये" अर्थात् विद्या वह है जो अखण्ड मुक्ति प्रदान करे। ऋग्वेद में कहा गया है कि मेधावी व्यक्ति विनम्र होता है। विनम्रता ही विद्वान का आभूषण है। विनम्रता और शालीनता से रहित विद्वता निरर्थक है। उससे समाज का कोई विशेष भला नहीं हो सकता।

आन्तरिक एवं बाह्य विनम्रता से पूर्ण निर्मलता ही किसी की महानता का परिचय कराती है। जो व्यक्ति ज्ञान, भक्ति, एवं वैराग्य के क्षेत्र में जितनी अधिक ऊँचाई पर पहुँचा हो, उससे उतनी ही अधिक विनम्रता की आशा की जाती है। जागनी के सन्दर्भ में श्री जी कहते हैं कि वही सुन्दरसाथ जाग्रत हुआ माना जायेगा, जो स्वयं को सबकी चरण-धूलि मानकर प्रेम का व्यवहार करे।

अब जो घड़ी रहो साथ चरने, होए रहियो तुम रेणु समान।
इत जागे को फल एही है, चेत लीजो कोई चतुर सुजान।।

किरंतन ८९/११

अपने सांसारिक पद, पैसे, एवं मान के अहंकार में जो लोग सुन्दरसाथ के बीच में अनुशासन की ओट में हुकूमत का ख्वाब पाले रहते हैं, उनके लिये श्री जी का कथन है–

इन जिमी में साथ जी, जिनों करी सिरदारी।
पुकार पुकार पछताए चले, जीत के बाजी हारी।।

किरंतन १०१/१०

अध्यात्म के क्षेत्र में बादशाहत उसी को मिलती है, जो विनम्रता, शान्ति, तथा सन्तोष की प्रतिमूर्ति बन चुका हो।

ए जो पातसाही दीन की, सो गरीबी से होए।

और स्वांत सबूरी बिना, कबहूं न पावे कोए।।

किरंतन ९५/१२

यह हमेशा ध्यान रखने योग्य बात है कि किसी भी संस्था, समाज, परिवार, आश्रम, या कार्यक्रम का अनुशासन विवेक, निष्पक्षता, एवं सत्यता के आधार पर ही सम्भव होता है। जो लोग अपनी तानाशाही मानसिकता से डण्डे द्वारा अनुशासन का सपना देखा करते हैं, वे बहुत बड़े भ्रम के शिकार हैं। जो व्यक्ति अपनी अन्तःप्रजा रूपी इन्द्रियों को नहीं जीत सकते, वे बाहर के मानव समाज को जीतकर कभी भी अनुशासन नहीं कर सकते। श्री जी ने जिन सुन्दरसाथ के लिए ये शब्द कहे हैं– "साथ के चरन धोए पीजिए, ताको दिए मैं

कष्ट" तथा "इन्द्राबाई कहे धामना साथने, हूं नमी नमी लागूं पाय"– ऐसे सुन्दरसाथ को अनुशासन के बहाने मानसिक रूप से प्रताड़ित करना बहुत बड़ा गुनाह है।

सुन्दरसाथ में नेतृत्व वही कर सकता है जो विनम्रता, निष्पक्षता, तथा सत्यता की प्रतिमूर्ति हो एवं क्रोध से कोसों दूर हो। धनी ने कहा है–

ज्यों ज्यों गरीबी लीजे साथ में, त्यों त्यों धनी का पाइए मान।
इत दोए दिन का लाभ जो लेना, एही वचन जानों परवान।।

किरंतन ८९/१२

जीव सृष्टि के समूह में हजारों महापुरुष ऐसे हुए हैं, जिन्होंने क्रोध आदि दुर्गुणों को पूर्णतया जीत लिया है तथा धर्म के सभी दसों अंगों को अपने जीवन में उतारा है। अक्षरातीत परब्रह्म के साक्षात अंग कहे जाने वाले

ब्रह्ममुनि सुन्दरसाथ से यही आशा की जाती है कि धर्म पालन के क्षेत्र में वे जीव सृष्टि के महापुरुषों से यदि आगे न निकल सकें, तो कम से कम अपनी गरिमा का ख्याल रखते हुए पीछे न रहें। यही शुभ कामना है।

यह तीसरी किरण सम्पूर्ण हुई।

चतुर्थ किरण

आध्यात्मिक रहनी

आत्म तत्व से सम्बन्धित सम्पूर्ण विषय अध्यात्म के अन्तर्गत आता है। हमारी आत्मा अपने प्राणवल्लभ प्राणप्रियतम अक्षरातीत को किस प्रकार रिझाये, यही हमारी आध्यात्मिक रहनी है, जो सर्वोपरि है। सामाजिक एवं धार्मिक रहनी की पूर्णता भी आध्यात्मिक रहनी से ही है। इसके बिना सब कुछ अधूरा है।

इस नश्वर जगत में धनी के आनन्द की अनुभूति हमेशा होती रहे, इसके लिये पाँच चीजों की आवश्यक्ता होती है–

महामत कहे ईमान इस्क की, सुक्र गरीबी सबर।

इन विध रूहें दोस्ती धनी की, प्यार कर सके त्यों कर।।

किरंतन १०२/१२

जिसके दिल में वाणी के ज्ञान से धनी की पहचान होने के कारण अटूट ईमान (विश्वास), अनन्य प्रेम, पल-पल धनी का शुक्रगुजार होना (धनी की कृपा को हमेशा याद रखना कि किस प्रकार उन्होंने भवसागर से हमें पार निकालकर हमारा हाथ पकड़ा है), विनम्रता, तथा सन्तोष (हर स्थिति में धैर्य के साथ मुस्कराते रहना) है, उसे हमेशा यह अनुभूति होती रहेगी कि अनन्त प्रेम और आनन्द के सागर प्रियतम परब्रह्म उसके धाम दिल में सहरग से भी नजदीक होकर बैठे हैं।

धाम धनी का हमारे लिये यह स्पष्ट कथन है कि हम परमधाम के पच्चीस पक्ष एवं युगल स्वरूप को अपनी आत्मा के हृदय में बसायें और उस आनन्द में डूबे रहें।

पच्चीस पख छे आपणा, तेमा कीजे रंग विलास।

प्रगट कहया छे पाधरा, तमें ग्रहजो सहु साथ।।

रास १/७९

इस मायावी जगत में पच्चीस पक्षों को दिल में बसाना ही हमारा परम लक्ष्य होना चाहिए।

जब लग तुम रहो माया में, जिन खिन छोड़ो रास जी।

पच्चीस पख लीजो धाम के, ज्यों होए धनी को प्रकास जी।।

प्रकास हिंदुस्तानी ३/५

हमारी आध्यात्मिक रहनी तो यही है कि हम अपने अर्श दिल की सेज्या पर धाम धनी को बिठायें, अपनी आत्मा के चक्षुओं से उन्हें जी भरकर देखें, आत्मा के कानों से उनकी प्रेम भरी वाणी सुनें, एवं आत्मा की वाणी से उनसे बातें करें। यदि हम ऐसा नहीं कर सकते, तो

इस खेल में हमारा आना ही व्यर्थ माना जायेगा और हमारी रहनी अधूरी मानी जायेगी।

जो मासूक सेज न आइया, देख्या सुन्या न कही बात।
सुख अंग न लियो इन सेज को, ताए निरफल गई जो रात।।

सागर ९/३७

किन्तु इस स्थिति को पाने के लिये हमें पल-पल मूल मिलावा की तरफ निहारना होगा।

ए मूल मिलावा अपना, नजर दीजे इत।
पलक न पीछे फेरिए, ज्यों इश्क अंग उपजत।।

सागर ७/४०

धनी को पाने के लिये जिस समर्पण, विरह, तथा अनन्य प्रेम की आवश्यक्ता है, उसके ऊपर थोड़ा सा

प्रकाश डालने का प्रयत्न करते हैं।

समर्पण–

योग दर्शन में कहा गया है कि परब्रह्म के प्रति समर्पित हुए बिना समाधि की प्राप्ति नहीं होती। ध्यान की पराकाष्ठा (आखिरी स्थिति) ही समाधि है, जिसमें प्रियतम का साक्षात्कार होता है।

समाधि सिद्धिः ईश्वर प्रणिधानात्। योग दर्शन

समर्पण की शुद्ध स्थिति में "मैं" और "मेरा" का अस्तित्व नहीं होता, बल्कि रोम–रोम में "तू" और "तेरा" ही बसा होता है। यह बात कहने में जितनी सरल लगती है, व्यवहार में उतनी ही कठिन है।

महामत कहे ऐ मोमिनो, सुनो मेरे वतनी यार।
खसम करावें कुरबानियां, आओ मैं मारे की लार।।

खिलवत २/३५

समर्पण की कसौटी पर खरा उतरने वाली रूह के लिये अपना कोई भी लौकिक अस्तित्व नहीं होता। वह अपनी आत्मा-परातम के ही भाव से सब कुछ करती है, किन्तु धनी के प्रेम-समर्पण में डूबकर। उसके मुख से हमेशा यही स्वर फूटा करते हैं-

केहेना केहेलावना ना रहया, ऐसा तुम दिया इलम।
तुम बिना जरा हैं नहीं, ज्यों जानों त्यों करो खसम।।
सिखाओ चलाओ बोलाओ, सो सब हाथ हुकम।
सो इलमें बेसक करी, और कहा कहूं खसम।।

दिन गए सो तुम जानत, बाकी भी जानत तुम।

जिन विध राखो त्यों रहूं, कहा कहूं खसम।।

ए तेहेकीक तुम कर दिया, तुम बिना कछुए नाहें।

ए भी तुम कहावत, इत मैं न आवत मुझे मांहे।।

खिलवत १०/४०,४६,५१,७६

कहें महामत तुम पर मोमिनों, दम दम जो बरतत।

सो सब इस्क हक का, पल-पल मेहर करत।।

खिलवत १२/१००

जिस प्रकार वट का सूक्ष्म बीज धरती में मिलकर अँकुरित हो जाता है तथा कालान्तर में एक विशाल वृक्ष का रूप ले लेता है, उसी प्रकार जिसने अपनी "मैं" खुदी को धनी के प्रेम-विरह में पूर्णतया बाहर कर दिया,

उसके अन्दर धनी का स्वरूप विराजमान हो जाता है–

मारया कहया काढ़या कहया, और कहया हो जुदा।
एही मैं खुदी टले, तो बाकी रहया खुदा।।

खिलवत २/३०

प्रियतम को पाने के लिये संसार की तरफ से मरना होगा, अर्थात् हम धनी के प्रेम में इतने समर्पित हो जायें कि हमें संसार नजर ही न आये–

जो पेहेले आप मुरदे हुए, तिन दुनी करी मुरदार।
हक तरफ हुए जीवते, उड़ पोहोंचे नूर के पार।।

सिनगार २४/९५

श्रीमुखवाणी के इल्म से, जिन्हे अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत की पहचान हो जाती है, वे मौत का शर्बत पी

लेते हैं अर्थात् उनके लिये संसार का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। अपनी मैं खुदी समाप्त कर देने के बाद न तो शरीर नजर आता है और न संसार, केवल प्रियतम की छवि ही दिल में अखण्ड रूप से नजर आती है। इसी को कहते हैं– संसार रूपी जल में कमल की तरह रहना। इस स्थिति में जाहिरी (बाह्य) इन्द्रियों की चाहनायें (वासनायें) समर्पण की अगिन में जलकर राख हो गयी होती हैं–

लगी वाली और कछु न देखे, पिंड ब्रह्मांड वाको है री नाहीं।
ओ खेलत प्रेमें पार पिया सों, देखन को तन सागर मांही।।

किरंतन ९/४

जो तूं ले हकीकत हक की, तो मौत का पी सरबत।
मुए पीछे हो मुकाबिल, तो कर मजकूर खिलवत।।

जोलों जाहेरी अंग न मरें, तोलों जागे न रूह के अंग।

ए मजकूर रूह अंग होवहीं, अपने मासूक संग।।

सिनगार २५/६५,६६

समर्पण की अवस्था में बुद्धि का चातुर्य समाप्त हो जाता है। सिन्धी वाणी के स्वरों में मात्र वह यही गुनगुनाया करती है–

सिकाइए त सिकां, मूं में सिकण न की।

रोहोंदिस तेही हाल में, अंई रखंदा जीं।।

सिन्धी १/९

धनी की चाहत में जो अपने को समर्पित कर देते हैं, उनके हृदय में शक नाम की कोई चीज होती ही नहीं क्योंकि उन्होंने पहले ही मौत का शर्बत पिया होता है, अर्थात् "मैं" और "मेरा" के बन्धनों को वे पहले ही काट

चुके होते हैं-

पेहेले पी तूं सरबत मौत का, कर तेहेकीक मुकरर।

एक जरा जिन सक रखे, पीछे रहो जीवत या मर।।

खिलवत २/३१

धनी के प्रेम की राह पर चलने वालों के लिये यह आवश्यक है कि वे अपने सांसारिक रिश्तों को भुलाकर परमधाम के रिश्ते (सुन्दरसाथ) को अपनाये। इस कार्य में किसी की परवाह किये बिना समर्पण तथा प्रेम की अग्नि में अपने को झोंक डाले। यदि हम ऐसा कर लेते हैं तो यह निश्चित है कि हमारे धाम हृदय में युगल स्वरूप तथा पच्चीस पक्ष की शोभा विराजमान हो जायेगी।

कर कबीला पार का, अंकूर बल सूर धीर।

एक धनी नजर लेय के, उड़ाए दे सरीर।।

महामत कहे पीछे न देखिए, नहीं किसी की परवाहे।

एक धाम हिरदे में लेय के, उड़ाए दीजे अरवाहे।।

किरंतन ८७/८,१३

समर्पण की ऐसी महिमा है कि ऋषि अष्टावक्र जी के ऊपर समर्पित होने से राजा जनक विदेह हो गये तथा श्री प्राणनाथ जी पर समर्पित होने से महाराजा छत्रसाल जी ब्रह्ममुनियों में सर्वोपरि शोभा को प्राप्त किये। इसी प्रकार जो भी सुन्दरसाथ अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत पर समर्पण की दृष्टि से जितना ही कुर्बान होगा, उसको उतना ही अधिक आत्मिक आनन्द मिलेगा। उसकी सुरता यहाँ बैठे-बैठे परमधाम के पच्चीस पक्षों के नजारे देखा करेगी। जो परमधाम की ब्रह्मसृष्टि होगी, उसे धनी पर समर्पित होने की बात सुनने मात्र से ही आनन्द आने

लगेगा।

साथ जी सोभा देखिए, करे कुरबानी आतम।
वार डारों नख सिख लों, ऊपर धाम धनी खसम।।
मोमिन एही परीछा, जोस न अंग समाए।
बाहेर सीतलता होए गई, मांहें मिलाप धनी को चाहे।।
कुरबानी सुन सखियां, उलसत सारे अंग।
सुरत पोहोंची जाए धाम में, मिलाप धनी के संग।।
जिन दिस मेरा पिऊ बसे, तिन दिस पर होऊं कुरबान।
रोम रोम नख सिख लों, वार डारों जीव सों प्रान।।

किरंतन ९०/१,१०,१८,२६

यह सत्य है कि इश्क का प्राण इल्म है और इलम का प्राण इश्क है। धनी के इश्क आये बिना मारफत

(विज्ञान) का इल्म नहीं आ सकता तथा बिना इल्म के ईमान आये बिना इश्क नहीं आ सकता।

किन्तु हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि यदि हमारे पास ईमान है किन्तु समर्पण नहीं है, तो इश्क हमसे कोशों दूर रहेगा। समर्पण के बिना इश्क की कल्पना व्यर्थ है, चाहे वह लौकिक प्रेम हो या आध्यात्मिक।

वेदों में परब्रह्म पर समर्पण के सम्बन्ध में अति सुन्दर वर्णन है। उसकी एक छोटी सी झलक यहाँ प्रस्तुत है–

हे परब्रह्म! तू हमारा है।

हे परब्रह्म! हम केवल तेरे ही हो जाएं।

हे प्रकाश स्वरूप परब्रह्म! आज हम तेरी इच्छा पर ही समर्पित हो गये हैं।

हे प्रकाश स्वरूप परब्रह्म! मैं तेरी ही हूँ।

हे प्रियतम परब्रह्म! तुम हमारे हो। हम तुम्हारे हैं।

त्वं नो असि।	ऋग्वेद २/७/५
स्याम ते त इन्द्र।	ऋग्वेद २/११/१३
वयं ते अद्य रिमा हि कामम्।	ऋग्वेद ३/१४/५
त्वाहमग्ने।	ऋग्वेद ५/९/६
त्वमस्माक, तव स्मसि।	ऋग्वेद ८/९२/३२

समर्पण की एक सामान्य सी पहचान यही कही जा सकती है कि यदि हम तारतम्य ज्ञान से सारी दुनिया को धनी की पहचान कराने का सामर्थ्य रखते हैं, तो भी हमें यह बात अपने ऊपर स्वप्न में भी नहीं लेनी चाहिए कि हम ऐसा कर सकते हैं, बल्कि इसे धनी की कृपा के

ऊपर छोड़ना होगा।

जो कोई मारे इन दुस्मन को, करे सब दुनियां को आसान।
पोहोंचावे सबों चरन धनी के, तो भी लेना न तिन गुमान।।

किरंतन १०२/११

समर्पण की राह पर चलने वाली रूह सुख-दुःख को धनी की इच्छा पर ही छोड़ देती है। वह अपने लौकिक सुख के लिये कभी भी धनी से प्रार्थना नहीं करती। पल-पल प्रेम में खोये रहने के कारण उसे यह भी चिन्ता नहीं रहती है कि सुन्दरसाथ की जमात में उसे शोभा मिलेगी या वह गुन्हेगारों की लाइन में खड़ी रहेगी।

जानो तो राजी रखो, जानों तो दलगीर।
या पाक करो हादीपना, या बैठाओ मांहें तकसीर।।

खिलवत ४/३८

धनी के प्रति स्वयं को समर्पित करना तभी सत्य माना जायेगा, जब हम अपने दिल में युगल स्वरूप को बसाने के सिवाय अन्य कुछ भी न चाहें। धनी के प्रेम में हम गलितगात हो जायें तथा जीव से सम्बन्धित सम्पूर्ण चाहनाओं को जड़–मूल से समाप्त कर दें।

यों सरूप दोऊ चित्त में लीजे, अंग वार डार के दीजे।
गलित गात सब भीजे, जीव भान भूंन टूक कीजे।।

परिकरमा ३/१७८

संसार के भक्तजन अपनी लौकिक इच्छाओं (पुत्र, राज्य आदि) के लिये कठोर तप करते रहे हैं, लेकिन धनी के प्रेम में समर्पित होने वाली ब्रह्मसृष्टि १४ लोक के सम्पूर्ण सुखों को भी तिनके के बराबर समझती है और अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत को ही अपने दिल में बसाना

चाहती है–

सोई मोमिन जानियो, जो उड़ावे चौदे तबक।

एक अर्स के साहेब बिना, और सब करे तरक।।

सिनगार १/३०

दुनिया के भक्तजनों ने वैकुण्ठ की प्राप्ति के लिये अपने शरीर को आरे से चिरवाया, बर्फ में गलाया, तथा पहाड़ की चोटी से छलांगे भी लगा दी, किन्तु परमधाम की ब्रह्मसृष्टि अपने धनी पर इस कदर समर्पित होती है कि वह युगल स्वरूप को अपने दिल में बसाने के सिवाय कुछ भी नहीं चाहती–

ताथें जो रूह अर्स अजीम की, सो क्यों न करे उपाए।

ले हक सरूप हिरदे मिने, और देवे सब उड़ाए।।

सिनगार ४/२१

सारा संसार खाने-पीने और आराम करने में अपने समय को खो रहा है कि ब्रह्मसृष्टि के लिये धनी की पहचान हो जाने के बाद खाना-पीना और आराम करना हराम है। उसे पल-पल धनी का प्रेम चाहिए।

यों चाहिए मोमिन को, रूह उड़े सुनते हक नाम।
बेसक अर्स से होए के, क्यों खाए पिए करें आराम।।

सिनगार २२/१३९

अच्छे-अच्छे वस्त्रों को पहनना, स्वादिष्ट भोजन करना, तथा हीरे-मोतियों से अपने को सजाने की रीति जीव सृष्टि की है। श्री राज जी के प्रति प्रेम में समर्पित होने वाले सुन्दरसाथ से तो यही आशा की जाती है कि वह माया के इन लुभावने भोगों में नहीं फँसेगा, बल्कि त्याग देगा।

पट पेहेर खाए चिकना, हेंम जवेर सिनगार।

हक लज्जत आई मोमिनों, जिन दुनी करी मुरदार।।

किरंतन ११०/८

परमधाम से अवतरित होने वाले ब्रह्ममुनियों के लिये सांसारिक सुखों का कोई भी महत्व नहीं है। उन्हें केवल धनी चाहिए।

महंमद सिखापन ए लई, जो उतरी अरवाहें सिरदार।

हक बका सिर लीजियो, छोड़ो दुनियां कर मुरदार।।

सिनगार २३/४४

इस अथाह माया से जिसने हमें निकाला तथा पल-पल अपनी मेहर की छत्रछाया में रख रहा है, ऐसे सकल गुण निधान धनी पर हम रोम-रोम से समर्पित क्यों न हों? यदि उसकी मेहर की हमें जरा सी पेहचान

हो जाये, तो यह चौदह लोक की दुनिया जहर भरी लगने लगेगी।

महामत कहे ए मोमिनों, ए देखो हक की मेहेर।

जो एक ऐहसान हक का लीजिए, तो चौदे तबक लगे जेहेर।।

परिकरमा ३३/३०

इस संसार के लोग अपने सिर पर पापों की गठरी लादे हुए घूम रहे हैं तथा इस दुनिया में गन्दगी के सिवाय अन्य क्या है। इश्क और ईमान (अनन्य प्रेम और अटूट विश्वास) की राह पर चलने वाली ब्रह्मसृष्टियों के लिये एक ही रास्ता है कि अपने दिल में युगल स्वरूप को बसाकर संसार से नाता तोड़ लेवें।

महंमद कहे ए मोमिनों, ए अर्स अरवाहों रीत।

हक बका ल्यो दिल में, छोड़ो दुनिया कर पलीत।।

हकें फुरमाया चौदे तबक, है चरकीन का चरकीन।

सो छोड़े एक मोमिन, जिनमें इस्क आकीन।।

सिनगार २३/४५,७४

इश्क के दरिया में क्रीड़ा करने के लिये "मैं" खुदी के पर्दे को हटाना अनिवार्य है। ऐसा किये बिना एक कदम भी प्रेम की राह पर नहीं चला जा सकता। "स्व" का अस्तित्व मिटाये बिना आत्म-जाग्रति का प्रश्न ही नहीं है।

पोहोंचे नहीं अंग दिल के, ताथे रूह अंग लीजे जगाए।

तोलों आपा ना मरे, जो लों खुदी न देवे उड़ाए।।

छोटा कयामतनामा १/४०

जब तक अपने अन्दर थोड़ा भी "अहं" का भाव रहेगा, तब तक धनी से मिलन सम्भव नहीं है। प्रेमपूर्ण

समर्पण ही धनी से मिलन कराता है।

जोलों कछु देखे आप, तो लों साहेब सो नहीं मिलाप।

छोटा कयामतनामा ८/१६

जब तक आत्मा पूर्ण समर्पण की स्थिति में नहीं होती, तब तक उसे अखण्ड परमधाम का सुख प्राप्त नहीं हो सकता। केवल हाथ में माला, गुदड़ी, तथा कन्धे में यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारण कर लेने से अपने को कृतकृत्य समझ लेना बहुत बड़ी भूल है। ये तो मात्र बाह्य भेष है। इस तरह की वेशभूषा का अनन्य प्रेम लक्षणा भक्ति से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। प्रेम , विरह, और समर्पण की राह पर चलने वाले सुन्दरसाथ को इन बाह्य भेषों को परित्याग कर देना चाहिये।

जो लों कछुए आपा रखे, तोलों सुख अखंड न चखे।
तसबी गोदड़ी करवा, छोड़ो जनेऊ हिरस हवा।।

बड़ा कयामतनामा ८/१७

जब ते एह आसा मेंटी, तब तो तूं साहेब सो भेंटी।
जोलों कछु देखे आप, तोलों साहेब सो नहीं मिलाप।।

बड़ा कयामतनामा ८/१६

परमधाम के अखण्ड सुखों की अनुभूति करने के लिये सुन्दरसाथ का यह कर्तव्य है कि इस तन के जीवित रहते-रहते ही अपनी मैं खुदी को समाप्त कर दें। यदि ब्रह्मसृष्टि ऐसा नहीं करती है , तो भला जीवसृष्टि कहाँ से कर सकेगी?

जीवते मारिए आपको, सब्द पुकारत हक।

जो जीवते न मरेंगे मोमिन, तो क्या मरेंगे मुनाफक।।

छोटा कयामतनामा १/१०४

यदि हमें इस नश्वर जगत में अखण्ड परमधाम के सुखों की अनुभूति करनी है, तो धनी के समर्पण में अपना सब कुछ कुर्बान करना ही होगा। ऐसा किये बिना परमधाम की लज्जत (स्वाद) हमें नहीं मिल सकती। इस नाचीज दुनिया के सुखों का मोह छोड़ने में झिझक कैसी? इसे छोड़ो और अपने प्रियतम को दिल में बसा लो।

बका चाहे सो फना होए, बिना फना बका न पावे कोए।

छोड़ो नाचीज जो कमतर, ताथे फना होए बका पर।।

बड़ा कयामतनामा ३/२६

विरह की अग्नि ऐसी महान औषधि है, जिसके द्वारा काम, क्रोध, एवं अहं रूपी रोग तुरन्त ही समाप्त हो जाते हैं। जिसके हृदय में धनी का विरह है, निश्चित रूप से वह निर्मल है।

विकार सारे अंग के, काम क्रोध दिमाक।
सो बिना विरहा ना जलें, होए नहीं दिल पाक।।

सनंध २७/१३

विरह या तो लौकिक दुःखों से उत्पन्न विवेक के कारण होता है या पूर्ण समर्पण से। हब्से में श्री इन्द्रावती जी ने अपने को विरह की अग्नि में जला डाला, जिसके फलस्वरूप उनके हृदय में युगल स्वरूप विराजमान हो गये।

दुख तें विरहा उपजे, विरहे प्रेम इस्क।
इस्क प्रेम जब आइया, तब नहेचे मिलिए हक।।

किरंतन १७/१६

विरह का कष्ट वह मछली ही जानती है, जिसे जल से बाहर निकाल दिया गया हो। जल ही मछली का जीवन है। इसके बिना उसके जीवन का प्रश्न नहीं है।

विरहा गत रे जाने सोई, जो मिल के बिछुड़ी होए, मेरे दुल्हा।
ज्यों मीन बिछरी जल थें, या गत जाने सोए, मेरे दुलहा।।

कलस हिंदुस्तानी ६/१

इसी प्रकार परमधाम की ब्रह्मसृष्टि भी हौजकौशर के इश्क रूपी जल की मछली है, वह परमधाम की अनुभूति किये बिना नहीं रह सकती।

मोमिन अर्स बका बिना, रेहे ना सके एक पल।

जो हौज कोसर की मछली, तिन हैयाती वह जल।।

सिनगार २३/५४

नवधा भक्ति (श्रवण, कीर्तन, स्मरण, अर्चन, पाद सेवन, वन्दन, दास्य, सख्य, और आत्म निवेदन) से विरह की अवस्था को नहीं पाया जाता है। भक्त और भगवान में विरह की लीला नहीं हो सकती। विरह में डूबने की शोभा तो केवल परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों की है, जो निराकार के पार के पार से इस झूठे खेल को देखने आयी हैं-

विरहा नहीं ब्रह्मांड में, बिना सोहागिन नार।

सोहागिन आतम पिउ की, वतन पार के पार।।

कलस हिंदुस्तानी ९/२३

विरह की स्थिति कुछ विलक्षण ही होती है। इसमें शरीर का रक्त तथा माँस भी गल जाता है। सिर नारियल जैसा शोभाहीन दिखने लगता है। विरह में तड़पने वाली आत्मा न तो उठ पाती है, न रो पाती है, न हँस पाती है। उसके लिये रत्नों के महल भी श्मशान की तरह दुःखदायी प्रतीत होते हैं।

सब तन विरहे खाइया, गल गया लोहू मांस।
न आवे अंदर बाहेर, या बिध सूकत स्वांस।।
हाड़ हुए सब लकड़ी, सिर श्री फल विरह अगिन।
मांस मीज लोहू रगां, या विध होत हवन।।
ए दरद तेरा कठिन, भूखन लगे ज्यों दाग।
हेम हीरा सेज पसमी, अंग लगावे आग।।

ए लछन तेरे दरद के, ताए गृह आंगन न सुहाए।

रतन जड़ित जो मंदिर, सो उठ उठ खाने धाए।।

विरहा न देवे बैठने, उठने भी ना दे।

लोटपोट भी ना कर सके, हूक हूक स्वांस ले।।

कलस हिंदुस्तानी ५/२,३,६,८,१०

विरह की अवस्था में इस मायावी शरीर की कोई चिन्ता नहीं होती, केवल एक ही लक्ष्य होता है कि मेरा प्रियतम मुझे मिल जाये।

माया काया जीव सो, भान भून टूक कर।

विरहा तेरा जिन दिसा, मैं वारूं तिन दिस पर।।

कलस हिंदुस्तानी ८/८

जिस प्रकार पतिंगा दीपक का वर्णन नहीं कर

सकता, उसी प्रकार विरहिणी भी धनी के विरह को पूर्ण रूप से व्यक्त नहीं कर सकती।

पतंग कहे पतंग को, कहां रहया तूं सोए।

मैं देख्या है दीपक, चल देखाऊं तोहे।।

पतंग और पतंग को, जो सुध दीपक दे।

तो होवे हांसी तिन पर, कहे नाहीं पतंग ए।।

दीपक देख पीछा फिरे, साबित राखे अंग।

आए देवे सुध और को, सो क्यों कहिए पतंग।।

जब मैं हुती विरह में, तब क्यों मुख बोल्यो जाए।

पर ए वचन तो तब कहे, जब लई पिया उठाए।।

कलस हिंदुस्तानी ९/१७,१९,२०,२१

ब्रह्मसृष्टियों का धनी के लिये विरह ऐसा होता है कि

किसी को भी उसका पता नहीं चल पाता।

मीठा गुझ मासूक का, काहूं आसिक कहे न कोए।
पड़ोसी पण ना सुनें, यों आसिक छिपी रोए।।

सिंधी १४/७

जिसके दिल में धनी के विरह के कारण "आह" की तड़प न हो, वह अपने को ब्रह्मसृष्टियों में न समझे (यह स्थिति इमान में पूर्ण होने के बाद ही मानी जाती है)।

जो अंग होवे अर्स की, उपजत नहीं अंग आहे।
बारे हजार रूहन में, सो काहे को आप गिनाए।।

छोटा कयामतनामा १/४२

धनी के विरह में रूह की मनःस्थिति ऐसी बन जाती है कि वह सोते समय या करवट लेते समय भी धनी की

ही शोभा में खोयी रहती है और दीदार के लिये तड़पती रहती है। उसे माला द्वारा जप करने की आवश्यकता नहीं पड़ती–

करवट लेते सूते नींद में, नाला मारत जे।
याद बिगर किए अंग आवहीं, स्वाद आसिक मासूक जे।।

छोटा कयामतनामा १/४३

प्रेम–

प्रेम के सम्बन्ध में सुन्दरसाथ में बहुत अधिक भ्रान्तियाँ हैं। कुछ की मान्यता है कि भावविह्वल होकर सेवा करना, भजन गाना, या पश्चिमी संगीत और कव्वाली की तर्ज पर तेज आवाज के साथ नाचना ही प्रेम है। ये सारी क्रियायें प्रेम का स्वरूप नहीं हैं, बल्कि

प्रेम के मूल स्वरूप को पाने का एक लघु प्रयास हैं।

हमारे देश में संगीत द्वारा परमात्मा को रिझाने की प्राचीन परम्परा रही है। सामवेद का मनोहारी गायन तो विश्व प्रसिद्ध है ही। गान्धर्व वेद सामवेद का उपवेद है , जिसके अन्तर्गत गायन तथा वादन की सम्पूर्ण शिक्षा है। भक्तिकाल में भी हरिदास जी जैसे शास्त्रीय संगीत के मर्मज्ञ सन्त हो चुके हैं, जिन्होंने भक्ति संगीत द्वारा अपना आध्यात्मिक जीवन व्यतीत किया।

भक्तिभाव से गाया हुआ शास्त्रीय संगीत जहाँ मन को अन्तर्मुखी बनाकर प्रियतम के भावों में खोने को मजबूर करता है, वहीं पाश्चात्य संगीत तथा कव्वाली की शैली में ढोलक की तीव्र आवाज के साथ गाये हुए भजन मन को चञ्चल एवं उत्तेजक बनाते हैं। यह विकृति और भयानक रूप ले लेती है, जब धनी को रिझाने के नाम

पर भद्दे तरीके से नाच लीला शुरु हो जाती है। क्या यही अध्यात्म है और क्या इसे ही अनन्य प्रेम लक्षणा भक्ति कहते हैं?

यदि शास्त्रीय रागों में या उपशास्त्रीय (सुगम) संगीत में वाणी गायन हो तथा मीराबाई की तरह भक्ति भाव में पूरित होकर शालीनता के साथ नृत्य हो तो अति उत्तम है, किन्तु कानफोडू संगीत के साथ कव्वाली के जोश में Disco Dance की तर्ज पर नाचना आध्यात्मिकता के नाम पर कलंक है। वाणी गायन को छोड़कर अश्लील फिल्मी धुनों पर भजन गाने की जो प्रवृत्ति चल पड़ी है, वह समाज को ब्रह्मवाणी से दूर करके अधःपतन की तरफ ले जाने वाली है। इसी तरह के भद्दे संगीत के लिये धनी ने कहा है–

तान मान कई रंग करो, अलापी करो किरंतन।

आप रीझों औरों को रिझाओ, पर बस न होए क्यों ए मन।।

किरंतन १४/६

ब्रह्मसृष्टियों के इस खेल में आने के कारण ही प्रेम का सच्चा स्वरूप जाहिर हुआ है। वह नवधा भक्ति तथा कानफोड़ू संगीत से नहीं प्राप्त हो सकता।

प्रेम नाम दुनिया मिने, ब्रह्मसृष्टि ल्याई इत।

ए प्रेम इनों जाहेर किया, ना तो प्रेम दुनी में कित।।

परिकरमा ३९/२

श्रीमुखवाणी से धनी के स्वरूप की पहचान होने के बाद प्रेम भरी सेवा आत्मा को जाग्रत करती है। प्रेम ही जीवन की सुगन्धि है। प्रेम के बिना शुष्क भाव से की गयी सेवा निरर्थक है, तभी तो धनी का कथन है-

तुम प्रेम सेवाएं पामसो पार, ए वचन धनी के कहे निरधार।

प्रकास हिंदुस्तानी ३४/१९

प्रेम भरी सेवा सोने में सुगन्धि की तरह है। अपने मन को सांसारिक तृष्णाओं से अलग रखकर की गयी सेवा आत्म-जाग्रति की राह खोल देती है-

ए नींद तुमको क्यों कर उड़सी, जोलों न उठो बल कर जी।

सेवा करो समें पिऊ पेहेचान, याद करो आप घर जी।।

जो जानो घर पाइए अपना, तो एक राखियो रस वैराग जी।

सकल अंगे सुध सेवा कीजे, इन विध बैठो घर जाग जी।।

प्रकास हिंदुस्तानी ३०/४०,४२

यदि गायन, वादन, और नृत्य को इश्क नहीं मानते तो इश्क (अनन्य प्रेम) का लक्षण क्या है? इस सम्बन्ध

में धाम धनी का कथन है–

इश्क को ए लछन, जो नैनों पलक न ले।

दौड़े फिरे न मिल सके, अन्तर नजर पिया में दे।।

कलस हिंदुस्तानी ७/९

चित्त की वृत्तियों के चारों तरफ माया में दौड़ते रहने से प्रियतम नहीं मिला करता। जब चित्त–मन की वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हो जायें तथा आत्मा के चक्षुओं से अपलक उस युगल स्वरूप को निहारा जाये, उसे ही इश्क या अनन्य प्रेम कहते हैं।

माशूक श्री राज को आशिक रूह जब देखती है, तब उसे आनन्द का अखण्ड अमृत रस प्राप्त होता है, यही प्रेम है।

मासूक की नजर तले, आठों जाम आसिक।
पिए अमीरस सनकूल, हुकम तले बेसक।।

किरंतन ९१/१५

आशिक रूह अपने माशूक श्री राज जी की शोभा में इस कदर डूबी रहती है कि वह एक पल भी अपने को धनी से अलग नहीं पाती। उसे दुनिया की फर्ज बन्दगी नहीं करनी पड़ती। न तो उसे माला का जाप करना पड़ता है और न नियमित पाठ ही करना पड़ता है।

न्यारा निमख न होंवहीं, करना पड़े न याद।
आसिक को मासूक का, कोई इन विध लाग्या स्वाद।।

किरंतन ९१/१६

आशिक के रोम-रोम में प्रियतम माशूक की शोभा छायी रहती है। प्रेम की ये लीला कुछ ऐसी होती है कि

दोनों एक स्वरूप में ओत-प्रोत होते हैं, आशिक और माशूक का पर्दा हट जाता है।

रोम रोम बीच रमि रहया, पिउ आसिक के अंग।

इस्कें ले ऐसा किया, कोई हो गया एकै रंग।।

किरंतन ९१/१७

किन्तु इस स्थिति को पाने के लिये हमें यह अहसास करना होगा कि यह संसार दुःखों की अग्नि में जल रहा है। हमें अपनी सुरता उस मूल मिलावा में ले जानी पड़ेगी, जहाँ अनन्त प्रेम और आनन्द के सागर युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी का नूरी स्वरूप विराजमान है। इसके सिवाय अन्य कोई मार्ग नहीं है।

अब हम रहयो न जावहीं, मूल मिलावे बिन।

हिरदे चढ़ चढ़ आवहीं, संसार लगत अगिन।।

किरंतन ९३/४

परिकरमा ग्रन्थ के चौथे प्रकरण का विषय है– "इश्क कैसे आये।" इसमें कहा गया है कि जब हम परमधाम के २५ पक्षों तथा युगल स्वरूप की शोभा को दिल में बसायेंगे तो हमारी आत्मा भी जाग्रत होगी, इश्क भी आयेगा, तथा अखण्ड सुख की प्राप्ति भी होगी।

एही अपनी जागनी, जो याद आवे निज सुख।
इश्क याही सों आवहीं, याही सों होइए सनमुख।।

परिकरमा ४/८

अखण्ड सुख को पाने के लिये हमें अपने इस पञ्चभौतिक शरीर तथा संसार को भुलाकर सुरता द्वारा परमधाम तथा युगल स्वरूप को जी भरकर निहारना होगा।

एही सुरत अब लीजो साथ जी, भुलाए देओ सब पिंड ब्रह्माण्ड।
जागे पीछे दुख काहे को देखे, लीजे अपना सुख अखंड।।

किरंतन ८९/५

आत्म-जाग्रति के लिये युगल स्वरूप की चितवनि के सिवाय कोई भी चारा नहीं। जब तक श्री राज जी की नख से शिख तक की शोभा दिल में नहीं उतर आती, तब तक अपने को जाग्रत मानना भूल है-

ऐसा आवत दिल हुकमें, यों इस्कें आतम खड़ी होए।
जब हक सूरत दिल में चुभे, तब रूह जागी देखो सोए।।

सिनगार ४/१

श्रीमुखवाणी का स्पष्ट कथन है कि युगल स्वरूप की शोभा-श्रृंगार को अपने दिल में हमेशा बसाये रखिए। इसी से हृदय निर्मल होगा। धाम-वर्णन छोड़कर यदि

संसार की तृष्णाओं में फँसे, तो दुःख ही दुःख है। दुःखों के नरक से छूटने का एक ही तरीका है, धाम की चितवनि।

निसदिन ग्रहिए प्रेम सो, जुगल सरूप के चरन।
निरमल होना याही सों, और धाम बरनन।।
इन विध नरक जो छोड़िए, और उपाय कोई नाहें।
भजन बिना सब नरक है, पचि पचि मरिए मांहे।।

किरंतन १०६/२,३

जो आत्मा इस प्रकार धनी के प्रेम में डूब जाती है, उसके लिये संसार होता ही नहीं क्योंकि उसकी सुरता तो परमधाम के सुखों का रसपान कर रही होती है–

सुरत न वाकी छल में, वाही तरफ उजास।

प्रेमैं में मगन भए, ताए होए गयो सब नास।।

कलस हिंदुस्तानी २/४४

यह प्रश्न उठता है कि चितवनि की इतनी महत्ता क्यों है? बीतक के अन्दर अष्ट प्रहर की लीला में सेवा की महत्ता बतायी गयी है और स्पष्ट कहा गया है कि सेवा में वही भाग लेते हैं, जिनका हाथ धनी स्वयं पकड़े रहते हैं। इसी प्रकार श्री जी को गायन द्वारा रिझाने वाले सुन्दरसाथ की भी सेवा का वर्णन है।

यह सत्य है कि श्री जी के साथ जो ५००० सुन्दरसाथ की जमात थी, उसमें से प्रत्येक ब्रह्ममुनि ने अष्ट प्रहर अपनी सेवा एवं गायन आदि से रिझाया। लेकिन हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि उस समय ८

प्रहर में से २ प्रहर (प्रातः ६ से ९ एवं सायं ३ से ६ बजे तक) चितवनि का ही कार्यक्रम होता था।

श्री राज अस्नान करके, तिलक चन्दन का समीर मिलाए।
भाल में आप देए के, कर चितवन साथ को देखाए।।

बीतक ६२/५२

पीछला बाकी दिन, रहया घड़ी चार।
धाम वतन चलने की, मोमिन करें विचार।।

बीतक ६७/४१

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी भी प्रतिदिन युगल स्वरूप की शोभा-श्रृंगार का वर्णन करते थे।

भाव काढ़ दिखावही, सब चरचा को रूप।
बरनन करें श्री राज का, सुन्दर रूप अनूप।।

बीतक ११/१९

इसी प्रकार सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के धामगमन के पश्चात् श्री मिहिरराज जी ने सबको चितवनि में लगा दिया।

तहां चितवनी धाम की, करत हैं सब कोए।
सरूप बस्तर बरनन, होने लगा सोए।।

बीतक १७/२२

वि.सं. १७४८ में "मारफत सागर" ग्रन्थ के अवतरण के पश्चात् १७४८-१७५१ तक स्वयं श्री महामति जी गुम्मट जी की गुमटी में चितवनि में तल्लीन हो गये और समस्त सुन्दरसाथ को यह सिखापन दी कि जैसे मैं चितवनि में डूबा हूँ, आप भी डूबकर परमधाम का आनन्द लो।

अब हम रहयो न जावही, मूल मिलावे बिन।

हिरदे चढ़ चढ़ आवहीं, संसार लगत अगिन।।

किरंतन ९३/४

चलो चलो रे साथ, आपन जईए धाम।

मूल वतन धनिएं बताया, जित ब्रह्मसृष्ट स्यामा जी स्याम।।

किरंतन ८९/१

बीतक साहेब में स्पष्ट रूप से यह वर्णन है कि जब तक महामति जी के स्वरूप से पाँचवें दिन की लीला (१७१२-१७५१ तक) चलती रही, तब तक सभी चितवनि में डूबे रहे।

अग्यारहीं जोलों रही, दिल बड़ो चाह धरे।

फेर ठंडे पड़ते गये, लाल कहे अंग ठरे।।

बीतक ७१/४७

उसके पश्चात् चितवनि की आग ठण्डी पड़ती गयी। केवल कुछ गिने-चुने परमहंसों ने ही चितवनि की लौ जलाये रखी है। सारा सुन्दरसाथ तो शरीयत और तरीकत की दीवारों से अपना सिर टकरा रहा है।

चितवनि से दूर रहने के कारण ही आज सुन्दरसाथ अपने आत्मिक बल को नहीं पहचान पा रहा है।

श्रीमुखवाणी का कथन अक्षरातीत का कथन है। यदि ब्रह्मवाणी में सब सुन्दरसाथ के लिये चितवनि का आदेश है, तो चितवनि के निषेध करने के सम्बन्ध में कुतर्क करना अक्षम्य अपराध है। देखिये! श्रीमुखवाणी में धनी क्या कहते हैं-

फेर फेर सरूप जो निरखिए, फेर फेर भूखन सिनगार।

फेर फेर मिलावा मूल का, फेर फेर देखो मनुहार।।

परिकरमा ४/२०

उपरोक्त चौपाई श्री युगल स्वरूप के वस्त्र–आभूषणों से युक्त शोभा को बार–बार देखने के लिये कह रही है। इसी प्रकार–

आतम सों न्यारे न कीजे, आतम बिन काहू न कहीजे।

फेर फेर कीजे दरसन, आतम से न्यारे न कीजे अधखिन।।

परिकरमा ३/१७६

इस चौपाई में स्पष्ट कहा गया है कि धनी की जिस शोभा का दर्शन हो रहा है, उसे आधे क्षण के लिये भी अपनी आत्मा के चक्षुओं से अलग नहीं करें।

खिलवत ग्रन्थ में स्पष्ट कहा गया है कि युगल स्वरूप के दीदार बिना यह जीवन व्यर्थ है।

ऐसा हक है सिर पर, कर दई हक पेहेचान।

ऐसी हक की मैं जोरावर, क्यों रहे दीदार बिन प्रान।।

खिलवत ४/२३

युगल स्वरूप की शोभा-श्रृंगार को दिल में बसाना एवं आत्म-चक्षुओं से देखना ही तो चितवनि है। इसका कोई भी विकल्प नहीं है।

याद करो जो कहया मैं सब, नींद छोड़ो जो मांगी है तब।

याद करो धनी को सरूप, श्री श्यामा जी रूप अनूप।।

परिकरमा ३/१९३

दिल में इश्क उपजाने का एवं धनी से प्रेम करने का

चितवनि के अतिरिक्त अन्य कोई भी मार्ग नहीं है। सभी ब्रह्ममुनियों ने इसी की राह पकड़कर धनी को पाया है–

इस्क नेहेचे मिलावे पिऊ, बिना इस्क न रहे जाको जिऊ।
ब्रह्मसृष्टि की एही पेहेचान, आतम इस्कै की गलतान।।

परिकरमा १/१२

माला द्वारा जप, पूजा, पाठ आदि कर्मकाण्डों द्वारा धनी को नहीं पाया जा सकता, किन्तु चितवनि का यह मार्ग प्रेम का मार्ग है, जिसके द्वारा धनी का दीदार होता है–

पंथ होवे कोट कलप, प्रेम पोहोंचावे मिने पलक।
जब आतम प्रेम सों लागी, दृष्ट अंतर तबहीं जागी।।

जब चढ़े प्रेम के रस, तब हुए धाम धनी बस।

जब उपजे प्रेम के तरंग, तब हुआ धाम धनी सो संग।।

परिकरमा १/५३,५६

आत्मा–परब्रह्म की लीला ही प्रेम की है। वेदों में इस सम्बन्ध में बहुत अच्छा वर्णन है–

हे परब्रह्म! जो तू है, वह मैं हो जाऊँ तथा जो मैं हूँ, वह तू हो जाये, अर्थात् आशिक माशूक हो जाये, माशूक आशिक हो जाये।

हे वरण करने योग्य प्रियतम! हम तेरे प्यारे हों।

हे प्रियतम! हम तेरे प्यारे हों।

हे प्रेम के अनन्त भण्डार! प्रेम का पान कीजिए, अर्थात् हमारा प्रेम स्वीकार कीजिए।

यदग्ने स्याम त्वं त्वं वा घा स्यामहम्।	ऋग्वेद
ते स्याम वरुण प्रियासः।	ऋग्वेद ५/८५/८
स्याम तव प्रियासः।	ऋग्वेद ७/६०/१
घृतं घृतयोने पिब।	यजुर्वेद ५/३८

इसी अनन्य प्रेम के द्वारा प्रियतम परब्रह्म का साक्षात्कार होता है। प्रेम शब्दातीत है, त्रिगुणातीत है। उसे पाने के लिये सुन्दरसाथ को रजोगुणी तथा तमोगुणी आहार, विचार, एवं कार्यों को बन्द कर शुद्ध सात्विक राह अपनानी ही पड़ेगी। चितवनि की राह से सत्वगुण अवस्था को भी पार करके उस त्रिगुणातीत अवस्था में ही प्रियतम का दीदार होगा।

प्रेम सब्दातीत तो कहया, जो हुआ ब्रह्म के घर।

सो तो निराकार के पार के पार, सो इत दुनी पावे क्यों कर।।

परिकरमा ३९/१२

वास्तविक सुन्दरसाथ या ब्रह्ममुनि वही है, जो चितवनि में लगकर धनी के दीदार द्वारा अरस-परस होकर प्रेम के प्याले पीता हो।

महामत कहे ऐ मोमिनों, जो होवे अरवा अर्स।

सो प्रेम प्याले ल्यो भर भर, पीजे हक सों अरस परस।।

परिकरमा ९/४७

जो सुन्दरसाथ अपना भला चाहते हैं, वे परमधाम के दीदार से मिलने वाले सुख को एक पल के लिये भी नहीं छोड़ेंगे।

महामत कहे ऐ मोमिनों, ए सुख अपने अर्स के।
एक पलक छोड़े नहीं, भला चाहे आपको जे।।

परिकरमा १६/१८

भले ही हमारा यह नश्वर तन यहाँ रहे, किन्तु हमें अपनी सुरता से प्रियतम के साथ परमधाम के पच्चीस पक्षों में विहार करना चाहिए। यही आध्यात्मिक आनन्द है।

महामत कहे सुनो साथ जी, खिन बन छोड़ो जिन।
या मंदिरों संग धनीय के, विलसो रात और दिन।।

परिकरमा १७/२१

परमधाम की शोभा अनन्त है। आज तक असंख्य ब्रह्माण्ड बन गये और प्रलय को प्राप्त हो गये तथा भविष्य में भी यह प्रक्रिया चलती रहेगी, लेकिन परमधाम के २५

पक्षों तथा युगल स्वरूप की चितवनि का जो ज्ञान अब मिला है, न तो पहले कभी मिला था और न कभी भविष्य में मिलेगा। इस अलौकिक निधि के आने के बाद जो धनी की चितवनि के आनन्द में नहीं डूबते, वे संसार के सबसे भाग्यहीन प्राणी हैं–

बरनन धाम को, कहूं साथ सुनो चित दे।

कई हुए ब्रह्मांड कई होएसी, कोई कहे न हम बिन ए।।

परिकरमा ३८/१

जब युगल स्वरूप तथा परमधाम की शोभा दिल में बस जाती है तो उठते, बैठते, सोते, जागते में भी वहाँ की रसानुभूति होती रहती है।

बैठते उठते चलते, सुपन सोवत जाग्रत।

खाते पीते खेलते, सुख लीजे सब विध इत।।

परिकरमा ४/१६

अपने शरीर, मन, चित्त को एकाग्र करके आत्म-चक्षुओं से परमधाम के अन्दर होने वाली धनी की प्रेममयी लीला को देखना चाहिए और उसमें मग्न हो जाना चाहिए।

फेर फेर देखो धनी हेत की, फेर फेर रंग विलास।
फेर फेर इस्क रस प्रेम की, देखो विनोद कई हांस।।

परिकरमा ४/२१

चितवनि में श्री देवचन्द्र जी का हाथ हिल जाने मात्र से सुरता टूट गयी थी तथा जो दीदार का सुख मिल रहा था, वह बन्द हो गया था। सुन्दरसाथ को बिना हिले-डुले (कमर तथा गर्दन को सीधा रखकर), मन को शान्त रखते हुए, आत्म-चक्षुओं से अपने प्रियतम को

एकटक देखना चाहिए। आतम के अन्दर युगल स्वरूप की छवि के विराजते ही वह परात्म जैसी शोभा वाली हो जाती है, यही जागनी का सुख है।

ए स्वाद आतम तो आवहीं, जो पलक न दीजे भंग।

अरस परस एक होवहीं, परआतम आतम संग।।

परिकरमा ५/३७

अन्तस्करन आतम के, जब ए रहयो समाए।

तब आतम परआतम के, रहे न कछु अन्तराए।।

सागर ११/४४

सुन्दरसाथ में एक बहुत बड़ी भ्रान्ति फैली हुई है कि श्री राज जी का नूरी स्वरूप करोड़ों सूर्यों से भी अधिक प्रकाशमान है। उनका दीदार करते ही शरीर छूट जायेगा, इसलिये चितवनि नहीं करनी चाहिए।

परमधाम के जिस नूरी स्वरूप का दीदार होता है, वह आत्म-चक्षुओं से होता है, न कि इन पञ्चभौतिक आँखों से। श्री देवचन्द्र जी ने अपने बाह्य चक्षुओं से भी श्याम जी के मन्दिर में दर्शन किया, किन्तु वह आवेश स्वरूप था। आवेश स्वरूप भी प्रकाशमयी ही होता है, लेकिन उसमें जलाने वाली बात नहीं होती। श्री देवचन्द्र जी को तीन बार धनी का दर्शन हुआ, लेकिन उनका तो शरीर नहीं छूटा।

पिया किए अति प्रसन्न, तीन बेर दिए दरसन।

प्रकट वाणी

श्री इन्द्रावती जी को हब्शे में दर्शन हुआ। महाराज श्री युगलदास जी ने अपने आत्म-चक्षुओं से परमधाम के चप्पे-चप्पे का वर्णन किया। बाबा दयाराम जी तथा

परमहंस महाराज श्री राम रतन दास जी को धनी का दीदार हुआ, लेकिन किसी के भी शरीर छूटने की बात नहीं आयी है। परमधाम की ब्रह्मसृष्टि का तन धनी के दर्शन से कभी भी नहीं छूटेगा। श्रीमुखवाणी में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि इस पञ्चभौतिक तन से धनी का जिन्होंने दीदार किया है, वही परमधाम की शोभा का वर्णन करते हैं।

जिन देखी सूरत हक की, इन वजूद के सनमंध।
सोई करे मूल मजकूर, सोई करे बरनन।।

सिनगार २२/११

यदि धनी के दर्शन से शरीर छूट जाता तो परिकरमा, सागर, तथा सिनगार ग्रन्थ के अवतरण की क्या आवश्यकता थी? परिकरमा ग्रन्थ में श्री इन्द्रावती

जी कहती हैं–

अब चितवन से कहत हों, जो देत साहेदी अकल।

परिकरमा ३०/१

जब धनी की मेहर से सांसारिक जीवों के लिये भी "दर्शन" का मार्ग खुल चुका है, तो परमधाम के सुन्दरसाथ के लिये चितवनि न करना अक्षम्य अपराध है–

जो कोई हक के हुकम का, ताए जो इलम करे बेसक।
लेवे अपनी मेहर में, तो नेक दीदार कबूं हक।।

सागर १४/२५

चितवनि करने के लिए धनी का स्पष्ट आदेश है –

सुरता एकै राखिए, मूल मिलावे मांहें।

स्याम स्यामा जी साथ जी, तले भोम बैठे है जाहें।।

सागर ७/३

हमें अपना ध्यान हमेशा ही उस मूल मिलावा में रखना है, जहाँ युगल स्वरूप सिंहासन पर विराजमान हैं। जो भी परमधाम की ब्रह्मसृष्टि होगी, वह युगल स्वरूप के चरणों को दिल में बसाकर ही जाग्रत हो सकेगी तथा निजधाम पहुँचेगी।

कहे महामत अरवा अर्स से, जो कोई आई होए उतर।

सो इन सरूप के चरन लेय के, चलिए अपने घर।।

सागर ८/११८

परमधाम की आत्मा युगल स्वरूप के चरणों की शोभा को देखकर उनमें इतना खो जाती है कि वह उनसे

अपनी नजर हटाना ही नहीं चाहती–

इन पांऊ तले पड़ी रहों, याको इतहीं खान पान।

एही दीदार दोस्ती कायम, जो होए अरवा अर्स सुभान।।

सागर ५/८८

धनी का दीदार ही रूहों का खाना–पीना तथा श्वास लेना है। इसके बिना वे दुनिया में रह ही नहीं सकतीं–

खाना दीदार इनका, यासों जीवे लेवे स्वांस।

दोस्ती इन सरूप की, तिनसे मिटत प्यास।।

सागर ५/९०

श्री राज जी से प्रेम करने वाले सच्चे आशिक तो वे सुन्दरसाथ हैं, जो धनी के किसी भी अंग की शोभा को देखकर उसमें इतना डूब जाते हैं कि दूसरी तरफ उनकी

नजर ही नहीं जाती–

आसिक कहिए हक की, जो लग रहे एकै ठौर।

आसिक ऐसी चाहिए, जो ले न सके अंग और।।

सागर ५/१३२

श्री महामति जी के शब्दों में– "जो भी परमधाम का सुन्दरसाथ है, वह युगल स्वरूप की छवि को दिल में बसाकर शाश्वत प्रेम का रसपान करता रहे।"

महामत कहे अपनी रूहन को, तुम जो अरवा अर्स।

सराब प्याले इस्क के, ल्यो प्याले पर प्याले सरस।।

सागर ५/१४१

परमधाम के सुन्दरसाथ वही कहे जायेंगे, जिनकी सुरता रंगमहल की गलियों में घूमा करे।

बारीक गलियां अर्स की, मोमिन भूलें न इत।

अरवा अर्स की रात दिन, याही में खेलत।।

खुलासा ५/४१

श्री राज जी के सुख के स्वरूप हौज कौशर, फूल बाग, नूर बाग, आदि की शोभा को देखने पर इस स्वप्न की दुनिया के झूठे दुःख समाप्त हो जाते हैं–

अर्स बाग हौज जोए के, करो याद हक के सुख।

ज्यों पेड़ झूठे ख्वाब का, उड़ जाए सब दुःख।।

खुलासा १८/८

परमधाम की चितवनि के दीदार रूपी सुख सागर में झीलना करके ही हमें परमधाम चलना है–

महामत कहे अपनी रूह को, और अर्स रुहन।

इन सुख सागर में झीलते, आओ अपने वतन।।

सागर ६/१४१

इस नश्वर शरीर से धनी का दीदार न होने सम्बन्धी भ्रान्तियों का निराकरण करते हुए स्वयं अक्षरातीत श्री जी कहते हैं –

पिऊ नेत्रों नेत्र मिलाइए, ज्यों उपजे आनन्द अतिघन।

तो प्रेम रसायन पीजिए, जो आतम थें उतपन्न।।

इतथें नजर न फेरिए, पलक न दीजे नैन।

नीके सरूप जो निरखिए, ज्यों आतम होए सुख चैन।।

ताथें हिरदे आतम के लीजिए, बीच साथ सरूप युगल।

सुरत न दीजे टूटने, फेर फेर जाइए बल बल।।

सागर ११/४०,४२,४६

वही परमधाम के सच्चे आशिक हैं, जिनका खाना, पीना, परिक्रमा, और सिजदा युगल स्वरूप के चरणों में है।

एही ठौर आसिकन की, अर्स की जो अरवाहें।
सो चरन तली छोड़ें नहीं, पड़ी रहें तले पाए।।

सागर १०/७०

तो कहया मोमिन खाना दीदार, पानी पीवना दोस्ती हक।
तवाफ सिजदा इतहीं, करूं रूह कुरबानी मुतलक।।

सिनगार ३/११

युगल स्वरूप की अति सुन्दर छवि को देखकर बार-बार बलिहारी होना ही आत्म-जाग्रति की निशानी

है।

सुन्दर सरूप छवि देख के, फेर फेर जाऊं बल बल।
जो रूह होवे अर्स की, सो याही में जाए रल गल।।

सागर ९/८०

जो कोई आत्म धाम की, इत हुई होए जाग्रत।
अंग आया होए इस्क, तो कछु बोए आवे इत।।

सागर ११/३९

जो सुन्दरसाथ धनी के चरण कमलों तथा हृदय (वक्षस्थल) की शोभा को अपने दिल में बसा लेते हैं, उनकी नजर कहीं और (संसार में) नहीं जाती। उस अलौकिक शोभा को देखे बिना संसार अग्नि की लपटों के समान कष्टकारी लगता है।

ए कदम ले दिल मोमिन, अर्स से ना निकसत।

ए रूहें जानें अर्स बारीकियां, जो असल हक निसबत।।

सिनगार ७/१८

जिन देख्या हक हैड़ा, क्यों नजर फेरे तरफ और।

वाको उसी सूरत बिना, आग लगे सब ठौर।।

सिनगार ११/२०

अपने प्रियतम श्री राज जी को पल-पल देखना ही सुन्दरसाथ का आत्मिक आहार है-

खाना पीना खिन खिन लिया, प्यार अर्स रूहन।

पल पल मासूक देखना, एही आहार आसिकन।।

सिनगार ११/६

श्री राजश्यामा जी के सच्चे प्रेम में डूबे रहने वाले

सुन्दरसाथ का एक यही काम होता है– युगल स्वरूप की शोभा–श्रृंगार में खुद को डुबोकर वाहेदत के सागर की लज़्ज़त लेना। उनके आठों प्रहर धनी के प्रेम में ही व्यतीत हो जाते हैं–

एही काम आसिकन के, फेर फेर करें बरनन।
विध विध सुख सरूप के, सुख लेवें सिनगार भिंन भिंन।।
एही आहार आसिकन का, एही सोभा सिनगार।
झीलें सागर वाहेदत में, मेहेर सागर अपार।।

सिनगार १८/७०,७१

एही लछन आसिक के, सब चढ़ते देखे रंग।
तेज जोत रस धात गुन, और सब पख इंद्री अंग।।

कोई काम न और रूहों को, एक जाने हक इस्क।

आठों जाम चौंसठ घड़ी, बिना प्रेम नहीं रंचक।।

सिनगार १९/३८,५३

जो माशूक श्री राज जी की शोभा के दीदार में स्वयं को डुबो देता है, वह उठते–बैठते सोते–जागते उन्हीं की शोभा में खोया रहता है–

खाते पीते उठते बैठते, सोवत सुपन जाग्रत।

दम न छोड़े मासूक को, जाको होए हक निसबत।।

सिनगार २०/३

इसके विपरीत जो सुन्दरसाथ आलस्य की नौका पर सवार होकर अपना अनमोल समय दूसरों का तकला तोड़ने में ही बर्बाद कर रहे हैं, उनके लिये धनी का कथन है–

बैठे मासूक जाहेर, पर दिल न लगे इत।

मासूक मुख देखन को, हाए हाए नैना भी न तरसत।।

सिनगार २५/७

जिन्होंने अपने दिल में धनी की शोभा को नहीं बसाया, उनके लिये श्रीमुखवाणी कहती है–

तिन मुख कहा होएसी, जो हक सो बैठी मुख फेर।

प्रकास हिंदुस्तानी

किसी भी तरह से युगल स्वरूप की शोभा–श्रृंगार का बार–बार वर्णन करना ही परमधाम की रूहों का आहार है।

हक बरनन फेर फेर करें, फेर फेर एही बात।

एही अर्स रूहों खाना पीवना, एही वतन बिसात।।

सिनगार २०/४

यदि हमें इस नश्वर जगत में परमधाम की लज्जत (स्वाद) चाहिए, तो हमें अपनी रूह के नैनों से मूल मिलावा में जाकर युगल स्वरूप के चरण कमलों की शोभा को देखना पड़ेगा।

अब चरन कमल चित देय के, बैठ बीच खिलवत।
देख रूह नैन खोल के, ज्यों आवे अर्स लज्जत।।

सिनगार २१/२१०

जो यथार्थ में परमधाम की ब्रह्मसृष्टि है, वह धनी के चरण कमलों की शोभा को एक पल के लिये भी नहीं छोड़ती है। उसमें धनी के प्रेम की खुमारी हमेशा छायी रहती है।

जो होवे अरवा अर्स की, सो इन कदम तले बसत।
सराब चढ़े दिल आवत, सो रूह निसदिन रहे अलमस्त।।
निमख न छोड़े चरन को, मोमिन रूह जो कोए।
निसदिन रहे खुमार में, आवत हैं चरन बोए।।

सिनगार २२/११७,११८

सुन्दरसाथ की जमात में परमधाम की ब्रह्मसृष्टि की स्पष्ट पहचान यही है कि उनकी कहनी , करनी, और रहनी परमधाम वाली (प्रेममयी) होगी। उनके दिल में युगल स्वरूप की छवि इस प्रकार बसी होती है कि एक पल के लिये भी वह उनके दिल से अलग नहीं हो सकती।

अरवा आसिक जो अर्स की, ताके हिरदे हक सूरत।
निमख न न्यारी हो सके, मेहेबूब की मूरत।।

अर्स रूहें पेहेचान जाहेर, इनों कौल फैल हाल पार।
सोई जानें पार वतनी, जाको बातून रूह सों विचार।।

सिनगार २३/१,४०

धनी का दीदार करना ही सुन्दरसाथ का आत्मिक आहार है और धनी से प्रेम करना जल पीना है–

करना दीदार हक का, एही मोमिनों ताम।
पानी पीवना दोस्ती हक की, इनों एही सुख आराम।।

सिनगार २३/६६

अपने हृदय को निर्मल बनाने के लिये माला के जप या नाच–कूद जैसी किसी अन्य बाह्य बन्दगी की आवश्यकता नहीं है।

निर्मल होने का एक ही यथार्थ मार्ग है कि या तो

मूल मिलावा के अन्दर विराजमान युगल स्वरूप की शोभा में अपनी सुरता लगायी जाये या हौज कौशर और यमुना जी के सातों घाटों में सुरता लगायी जाये–

या तो खड़ी रहे रूह खिलवतें, या तो देवे तवाफ।
हौज जोए या अर्स में, तूं इन विध हो रहे साफ।।

सिनगार २४/६४

अब सुन्दरसाथ को सावधान हो जाना चाहिए। माया की तृष्णा में कोई शान्ति मिलने वाली नहीं है। अपने प्रियतम की शोभा में दिन–रात डूबे रहने में ही सच्चा सुख है।

ताथें तूं चेत रूह अर्स की, ग्रहे अपने हक के अंग।
रहो रात दिन सोहोबत में, हक खिलवत सेवा संग।।

सिनगार २४/६७

अपने शरीर या निवास स्थान को पानी से बार–बार धोने मात्र से पवित्रता नहीं आती। पवित्र होने के लिये कालमाया और योगमाया को छोड़कर परमधाम में हौज कौशर या यमुना जी में सुरता द्वारा जाना पड़ेगा।

पाक न होइए इन पानिएं, चाहिए अर्स का जल।
नहाइए हक के जमाल में, तब होइए निरमल।।

सिनगार २५/४४

मोमिन उजू जब करें, पीठ देवें दोऊ जहान को।
हौज जोए जो अर्स में, रूह गुसल करें इनमों।।
ला फना सब ला करें, और इला बका ग्रहे हक।
ए कलमा हकीकत मोमिनों, और हक मारफत बेसक।।

सिनगार २५/४७,५०

परमधाम से अवतरित होने वाले ब्रह्ममुनियों का वास्तविक भोजन यही है कि उनके दिल में युगल स्वरूप विराजमान हो जायें। इसी में उनका सुख–चैन है–

मोमिन हक बिना न देखें, एही मोमिनों ताम।
बन्दगी तवाफ सब इतहीं, मोमिनों इतहीं आराम।।
खाना पीना सब इतहीं, इतहीं मिलाप मजकूर।
इतहीं पूरन दोस्ती, इत बरसत हक का नूर।।

सिनगार २५/५९,६०

जब आत्मा के दिल में श्री राज जी का नख से शिख तक का श्रृंगार उतर आता है, तो श्री राज जी और परात्म की तरह ही आत्मा का भी पूर्ण श्रृंगार खड़ा हो जाता है। इसे ही आत्मा का फरामोशी से जाग्रत होना कहते हैं और यही इस जागनी ब्रह्माण्ड का मूल मुद्दा है,

जिसे प्राप्त करने की कसौटी पर खरा उतरने पर ही हमारी आध्यात्मिक रहनी पूरी मानी जायेगी, अन्यथा नहीं।

सरूप ग्रहिए हक का, अपनी रूह के अन्दर।

पूरन सरूप दिल आइया, तब दोऊ उठे बराबर।।

सिनगार २५/६१

यदि हमने तन, मन, और धन से बहुत अच्छी सेवा की है, वाणी, बीतक, चर्चनी, एवं अन्य धर्मग्रन्थों का बहुत अच्छा ज्ञान है, सदाचार में अग्रगण्य हैं, और समाज में भी बहुत अधिक सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं, तो यह हमारी बहुत बड़ी उपलब्धि मानी जायेगी, किन्तु यदि हमने इन्हीं उपलब्धियों को सब कुछ मान लिया तथा अपने हृदय कमल में युगल स्वरूप श्री

राजश्यामा जी को नहीं बसाया तो हमारी पूर्व की सारी उपलब्धियाँ निरर्थक हो जायेंगी तथा धाम धनी के शब्दों में हमें व्यंग्यपूर्ण उलाहने के ये स्वर अवश्य सुनने पड़ेंगे–

स्याबास तुमारी अरवाहों को, स्याबास हैड़े सखत।
स्याबास तुमारी बेसकी, स्याबास तुमारी निसबत।।
धंन धंन तुमारे ईमान, धंन धंन तुमारे सहूर।
धंन धंन तुमारी अकलें, भले जागे कर जहूर।।

सिनगार २८/१२०

सुन्दरसाथ विलक्षण बुद्धि से सम्पन्न हैं। उनके लिये अधिक न कहते हुए श्री महामति जी के शब्दों में केवल इतना ही कहना चाहूँगा–

मोमिन होए सो समझियो, ए बीतक कहे महामत।

अब बात न रही बोलन की, कहया चलते जान निसबत।।

सागर १२/४७

यह चौथी किरण सम्पन्न हुई।

पंचम किरण

प्रेरणादायी प्रसंग

हमारे जीवन में "प्रेरणादायी" प्रसंग उन प्रकाश स्तम्भों की तरह हैं, जिनके द्वारा हमारा निर्देशन होता है। कृपा के सागर परब्रह्म ने श्री देवचन्द्र जी एवं श्री मिहिरराज जी के तन में लीला करके हमारे लिये वह स्वर्णिम पथ तैयार किया है, जिस पर चलकर हम अध्यात्म की महान ऊँचाईयों को छू सकते हैं। इसके अतिरिक्त ब्रह्ममुनियों तथा अन्य महापुरुषों द्वारा घटित अनेक घटनाक्रमों का इस अध्याय में संक्षिप्त वर्णन है , जो हमें शाश्वत सत्य की राह पर निरन्तर आगे बढ़ने के लिये प्रेरित कर रहे हैं। अब यह हमारा उत्तरदायित्व है कि आदर्शों के खजाने से बहुमूल्य रत्नों को निकालकर अपने आध्यात्मिक जीवन का श्रृंगार करें।

१. दृढ़ संकल्प

अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत की खोज में श्री देवचन्द्र जी अपनी किशोरावस्था में ही घर छोड़कर कच्छ जाने का निर्णय कर लेते हैं। उमरकोट से कच्छ लगभग १२० कि.मी. से भी अधिक दूर है। सन्ध्या समय माता-पिता से छिपकर बारात के पीछे चल देते हैं। आगे रात्रि का घना अन्धकार है, रेतीला मार्ग है, मार्ग में कोई सहचर नहीं और पैदल ही जाना है, फिर भी चेहरे पर कोई शिकन नहीं है। मन में दृढ़ संकल्प है, प्रियतम को पाने के लिये कठिनाइयों से जूझने का। श्री देवचन्द्र जी की अटूट निष्ठा और दृढ़ संकल्प के सामने कठिनाइयाँ हार जाती हैं। परिणाम यह होता है कि जिसको खोजने के लिये घर से चले थे, वही छद्म (पठान) भेष में प्रकट होकर उन्हें कच्छ तक पहुँचाता

है। जिस प्रकार समुद्र में यात्रा करने वाला यात्री जलयान के नष्ट हो जाने पर भी अन्तिम साँस तक अपने हाथों से तैरकर समुद्र को पार करने का साहस रखता है, वैसे ही सत्य की राह पर चलने वालों को कभी भी न तो अपना धैर्य खोना चाहिए और न अपना संकल्प तोड़ना चाहिए।

२. लौकिक सिद्धि का त्याग

श्री देवचन्द्र जी अपनी सच्ची निष्ठा से हरिदास जी की सेवा में तल्लीन थे। एक दिन बिच्छू के विष से मरणासन्न व्यक्ति को हरिदास जी ने पूर्ण स्वस्थ कर दिया और देवचन्द्र जी को वह मन्त्र सीखने के लिये आग्रह किया। श्री देवचन्द्र जी ने उत्तर दिया कि आपका दिया हुआ मन्त्र लाखों बिच्छुओं के कष्ट वाले इस भवसागर से

छुड़ाने वाला है, उसे छोड़कर एक सामान्य बिच्छू के विष को उतारने वाला मन्त्र मैं क्यों ग्रहण करूँ।

३. सच्चा व्रत

नवतनपुरी में श्री देवचन्द्र जी कान्ह जी भट्ट के पास श्रीमद्भागवत् का श्रवण करते थे। एक दिन कान्ह जी भट्ट के पास कुछ लोगों ने शिकायत की कि श्री देवचन्द्र जी उल्टी राह चलते हैं। ये एकादशी को भरपेट भोजन करते हैं तथा द्वादशी को जब हम भोजन करते हैं तो ये उपवास रखते हैं। श्री देवचन्द्र जी ने स्पष्ट उत्तर दिया कि जब एकादशी को अधिक चर्चा मिलती है, तो आत्मिक आहार पूर्ण मिलने के कारण शरीर को भी पूर्ण आहार देता हूँ। द्वादशी को कथा-श्रवण न होने के कारण जब

मेरा आत्मिक आहार ही पूरा नहीं होता, तो मैं शरीर को भोजन क्यों दूँ? मुझे स्वर्ग का साधन कराने वाले इस एकादशी व्रत से कोई भी प्रयोजन नहीं है।

४. श्रवण-निष्ठा

अपने प्रियतम को पाने के लिये श्री देवचन्द्र जी ने अनेक गुरुजनों की संगति की तथा उनके द्वारा बताये मार्ग के अनुसार कठोर साधना भी की। उनकी दिनचर्या इतनी साधनामयी थी कि रात्रि में मात्र तीन घण्टे ही वे सोते थे। शेष सारा समय ध्यान, सेवा, एवं कथा-श्रवण में व्यतीत करते थे। यौवन की उत्ताल तरंगे भी उनकी आध्यात्मिकता को प्रभावित नहीं कर पायीं। मात्र २६ वर्ष की उम्र में ही उन्होंने ध्यान द्वारा अखण्ड व्रज

विहारी के रूप में अपने प्रियतम का साक्षात्कार भी कर लिया, लेकिन अक्षरातीत का पूर्ण साक्षात्कार ४० वर्ष की उम्र में हुआ, जिसके पूर्व उन्हें कड़ी परीक्षा से होकर गुजरना पड़ा।

लगातार कई दिनों तक बुखार रहने के कारण, श्री देवचन्द्र जी ने लगभग १०-१२ दिनों तक उपवास किया। तत्पश्चात् उनका उपचार करने वाले वैद्य ने सख्त हिदायत दी कि दवा ग्रहण करने के पश्चात् आप खुली हवा में नहीं जायेंगे। आज दिन तक ऐसी घड़ी कभी नहीं आयी थी, जब अस्वस्थता के कारण श्री देवचन्द्र जी ने अपनी साधना या कथा-श्रवण में बाधा आने दी हो। दवा खाने के बाद जब वे कथा-श्रवण के लिये लाठी के सहारे जाने लगे तो माता-पिता ने तीव्र प्रतिरोध किया, जिसके कारण वे बेहोश होकर गिर पड़े। होश में आने पर माता-

पिता ने उन्हें कथा–श्रवण में जाने की स्वीकृति दे दी। शरीर में चलने की ताकत नहीं थी, फिर भी अपनी निष्ठा पर उन्होंने आँच नहीं आने दी और लाठी के सहारे धीरे–धीरे चलते हुये मन्दिर पहुँच गये। वर्तमान समय में प्रसार साधनों की बहुलता के बावजूद भी आध्यात्मिक ज्ञान के श्रवण के प्रति इतनी निष्ठा कहाँ है?

५. जातिगत भेदभाव झूठे हैं

सद्गुरू धनी श्री देवचन्द्र जी सुन्दरसाथ को परमधाम के अलौकिक ब्रह्मज्ञान का रस पिला रहे थे, अचानक उनके कानों में सब्जी बेचती हुई एक मुस्लिम विधवा की आवाज सुनायी पड़ी। श्री देवचन्द्र जी ने उसे दीक्षा दी तथा भोजनालय में सेवा हेतु रख लिया। आज

से ३५० वर्ष पूर्व जब चारों ओर छूतछात का आडम्बर था, लोग छोटी जातियों के कुँए पर चढ़ जाने मात्र से जल को अशुद्ध मान लेते थे, ऐसे समय में मुस्लिम विधवा को भोजनालय की सेवा में नियुक्त करना धार्मिक क्रान्ति का सूत्रपात करना था।

६. प्रेम साधना में आयु का बन्धन नहीं

प्रायः जनमानस में यह बहुत बड़ी भ्रान्ति रहती है कि भक्ति का समय केवल वृद्धावस्था है। युवावस्था तो केवल लौकिक सुखों के उपभोग के लिये है। श्री मिहिरराज जी ने इस भ्रान्ति को पूरी तरह तोड़ दिया। जब उनकी उम्र मात्र २६ वर्ष की थी, तो परमधाम एवं धनी के दीदार की इतनी कठोर साधना के मार्ग पर चल

पड़े। आहार इतना सूक्ष्म कर दिया कि चलना-फिरना भी कठिन हो गया। लौकिक आकर्षणों से उन्होंने अपना मन पूरी तरह हटा लिया और चितवनि द्वारा रंगमहल तथा अपनी परात्म को भी देख लिया।

सामान्य लोग २६ वर्ष की उम्र में लौकिक तृष्णाओं के जाल में फँसे रहते हैं, किन्तु इसी उम्र में श्री मिहिरराज जी ने चितवनि द्वारा धनी एवं परमधाम के दीदार के लिये समय की बाट न देखने की प्रेरणा दी है।

७. दुःख की उपयोगिता

हर व्यक्ति दुःख से घबराता है, किन्तु किसी न किसी रूप में दुःख सबको भोगना ही पड़ता है। दुःख के समय ही परमात्मा की याद आती है, अन्यथा मनुष्य तो

सुखों में फँसकर परब्रह्म के अस्तित्व को ही नकार दे। परब्रह्म की जब सच्ची कृपा होती है, तभी दुःख मिलता है, जिससे आत्म-मन्थन का मार्ग खुल जाता है।

श्री मिहिरराज जी ने सुन्दरसाथ की सेवा हेतु अपने वेतन से सारी तैयारी की, किन्तु बिहारी जी ने जाम वजीर के यहाँ झूठी चुगली करा दी, परिणाम स्वरूप श्री मिहिरराज जी को अपने दोनों भाइयों साँवलिया तथा उद्धव के साथ नजरबन्द होना पड़ा। पूर्णतया निर्दोष होने पर भी इस तरह के कष्ट से श्री मिहिरराज जी के तन में स्थित इन्द्रावती जी की आत्मा विरह में चीत्कार कर उठी। प्रियतम के विरह की अग्नि इतनी अधिक बढ़ गयी कि शरीर मात्र हड्डियों का ढाँचा भर रह गया। अन्ततोगत्वा युगल स्वरूप उनके धाम हृदय में विराजमान हो गये और परमधाम की वाणी का अवतरण

प्रारम्भ हो गया।

दुःख के समय कभी घबराना नहीं चाहिए, बल्कि धैर्यपूर्वक प्रियतम के प्रेम में रहते हुये संघर्ष करना चाहिए। यदि श्री मिहिरराज पर आरोप नहीं लगते और वे हब्से में नजरबन्द नहीं होते, तो न वे विरह की अग्नि में तड़प पाते और न धनी का दीदार कर पाते। तभी तो श्री महामति जी कहते हैं–

जो साहेब सनकूल होवहीं, तो दुःख आवे तिन।
इन दुनिया में चाह कर, दुख न लिया किन।।
महामति कहे इन दुख को, मोल न कियो जाए।
लाख बेर सिर दीजिए, तो सर भर न आवे ताए।।

किरंतन १७/३१,३४

८. विद्वता का अहंकार मूर्खता है

उपनिषदों में कहा गया है – "सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म", अर्थात् ब्रह्म सत्य, ज्ञान स्वरूप, और अनन्त शक्ति वाला है। ब्रह्मज्ञान से ही मानव की वास्तविक शोभा है, किन्तु ज्ञान की शोभा वैराग्य, भक्ति, शील, सन्तोष, निराभिमानिता आदि गुणों से जुड़ने पर ही है। इन गुणों से रहित व्यक्ति धर्मग्रन्थों का केवल शब्द ज्ञान प्राप्त कर लेने पर आध्यात्मिक बल से रहित तो होता ही है, अपनी विद्वता के सामने संसार में किसी को कुछ भी नहीं समझता। "विद्या ददाति विनयं" अर्थात् विद्या विनम्रता देती है, का कथन इन पर लागू नहीं होता।

ऐसे ही एक दिग्विजयी विद्वान थे हरजी व्यास, जो जूनागढ़ में रहते थे। जब वे मरणासन्न स्थिति में थे, तो वे कहने लगे कि मैं एक बात की दाझ लेकर मर रहा हूँ कि

मैंने जिस बात को "नहीं" कह दिया उसे "हाँ" सिद्ध करने वाला कोई विद्वान नहीं हुआ, तथा जिस बात को मैंने "हाँ" कह दिया उसे कोई भी "नहीं" के रूप में सिद्ध नहीं कर सका।

धाम धनी की कृपा तथा कान्ह जी भाई की सेवा से वे पुनः स्वस्थ हो गये। जब श्री प्राणनाथ जी जूनागढ़ पहुँचे, तो उनके साथ हरजी व्यास की धर्म चर्चा बहुत दिनों तक हुई। एक दिन ८४ लाख योजन हीरे के महल का प्रसंग आने पर श्री जी ने जब पूछा कि वह कहाँ है और किसका है, तो लाख प्रयास करने पर भी हरजी व्यास उत्तर न दे सके और श्री जी के चरणों में नतमस्तक हो गये। अपनी विद्वता का सारा अहंकार भी उन्होंने पूर्णतया त्याग दिया और अध्यात्म की सच्ची राह ग्रहण की। विनम्रता और भक्ति से रहित केवल शाब्दिक

ज्ञान वाले व्यक्ति को वास्तविक विद्वान नहीं कहा जा सकता।

९. सत्य का ग्रहण

जीवन में सफल होने का मूल मन्त्र है– "सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग में कभी संकोच नहीं करना।"

परमधाम की आत्माओं की जाग्रति हेतु श्री प्राणनाथ जी ठट्ठानगर पधारे। वहाँ चिन्तामणि नामक एक महन्त थे, जो कबीर पन्थ से जुड़े थे। वे अपने एक हजार शिष्यों के साथ बहुत अधिक सम्मान का जीवन व्यतीत कर रहे थे। श्री प्राणनाथ जी के मुखारविन्द से प्रवाहित अलौकिक वाणी को सुनकर वे प्रभावित तो बहुत हुये, लेकिन शिष्यों के सामने संकोचवश वे समर्पण

नहीं कर पा रहे थे। उन्होंने श्री जी से एकान्त में कहा कि शिष्यों के सामने हमारी लाज रखते हुये आप चर्चा करें।

निदान, श्री जी की चर्चा से चिन्तामणि के मन की मैल धूल गयी और वे भरी सभा के बीच में उठकर बोले कि आपकी ज्ञान रूपी लाठी से मैंने अपने अहं रूपी काले कुत्ते को मार डाला है। तत्पश्चात् उन्होंने अपने सभी शिष्यों सहित तारतम्य ज्ञान ग्रहण किया।

वे विरले ही महापुरुष होते हैं, जो अपने सैंकड़ों शिष्यों के बीच किसी के सामने नतमस्तक होकर यह स्वीकार करें कि न तो उनके पास यथार्थ ज्ञान है और न कोई आत्मिक बल है। यह कार्य ब्रह्मसृष्टि ही कर पाती है, अन्यथा संसार के जीव अपने आधे जल वाले ज्ञान रूपी घड़े को लेकर सर्वज्ञता का दावा करते फिरते हैं। यहीं से विवादों की श्रृंखला शुरु हो जाती है। अपनी

अज्ञानता को स्वीकार करने वाला निश्चय ही महान होता है।

१०. बुराई को छोड़ने में देर क्यों?

अब्बासी बन्दर में श्री प्राणनाथ जी की दिव्य चर्चा सुनने के पश्चात् भी जब भैंरव सेठ की आत्मा जाग्रत नहीं हुई, तो श्री जी ने उसे इन चार विषयों का परित्याग करने के लिये कहा, क्योंकि वह इनमें पूरी तरह डूबा हुआ था– १. माँस–मछली नहीं खाना, २. तम्बाकू, शराब आदि का सेवन न करना, ३.परस्त्रीगमन न करना, ४. कभी भी किसी का अनीतिपूर्वक धन न लेना।

श्री प्राणनाथ जी की इस बात को सुनते ही उसने तुरन्त अपना हुक्का तोड़ दिया तथा माँस–शराब पर भी

पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया। इस संयमपूर्ण जीवन के तीसरे दिन ही श्री जी की कृपा से उसकी आत्मा जाग्रत हो गयी और उसे धाम धनी का साक्षात्कार हो गया।

सामान्यतः यही देखा जाता है कि लोग विषयों के दुष्परिणामों से अच्छी तरह अवगत होते हुये भी उसे छोड़ नहीं पाते। वे हमेशा यही सोचते हैं कि आज भर भोग लें, कल से छोड़ देंगे, लेकिन उनके जीवन में नाम मात्र को भी परिवर्तन नहीं दिखता। वे जीवन भर बुराइयों के दास बने रह जाते हैं, लेकिन जो लोग भैंरव सेठ की तरह दृढ़ संकल्पवान् हैं, वे बुराइयों को छोड़ने में एक मिनट की भी देरी नहीं करते। परिणाम स्वरूप वे सफलता की सर्वोच्च ऊँचाइयों पर विराजमान हो जाते हैं।

११. शरणागत–प्रेम

यह लोक रीति है कि किसी विशिष्ट पद, ऐश्वर्य, और बहुमत के प्रति लोगों का झुकाव स्वाभाविक ही होता है, किन्तु धर्मशास्त्र का सिद्धान्त यही कहता है कि मनुष्य कभी भी सर्वांगीण पूर्णता को प्राप्त नहीं होता। पूर्ण तो मात्र परब्रह्म ही है, जो त्रिकाल सत्य है। सत्य ही धर्म का स्वरूप है। मनुष्य को आँख मूँदकर केवल धर्म का ही आश्रय लेना चाहिए, क्योंकि जब सृष्टि नहीं थी तब भी सत्य स्वरूप धर्म था और जब सृष्टि नहीं रहेगी तब भी धर्म ही रहेगा। सत्य का पालन करने में यदि सारा विश्व भी विरोध में खड़ा हो जाये, तो भी घबराना नहीं चाहिए, बल्कि अन्तिम साँस तक अन्याय और अधर्म का प्रतिकार (विरोध) करना चाहिए।

इस सम्बन्ध में भर्तृहरि का यह कथन बहुत ही

उपयुक्त है कि नीति में निपुण लोग निन्दा करें या स्तुति करें, ऐश्वर्य (लक्ष्मी) अपने पास रहे या चला जाये, मृत्यु तत्काल हो जाये या युगों के बाद हो, किन्तु धीर (विवेकी) पुरुष न्याय के मार्ग से रंच मात्र भी विचलित नहीं होते हैं।

निन्दन्ति नीति निपुणाः यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम।
अद्यैव मरणमस्तु युगान्तरे वा न्यायात्
पथः प्रविचलन्ति न धीराः।। भर्तृहरि नीति शतक

हमें कभी भी अपने मन में यह नहीं सोचना चाहिए कि हम अकेले हैं। यदि हम मन, वाणी, और कर्म से धर्म का अनुशरण कर रहे हैं, तो सर्वशक्तिमान परब्रह्म की शक्ति हमारे साथ अवश्य रहेगी। यज्ञों के नाम पर होने

वाली हिंसा का विरोध करने में प्रारम्भ में गौतम बुद्ध अकेले ही चले। नास्तिकतावाद को उखाड़ फेंकने के काम में आदिशंकराचार्य अकेले ही चले। पौराणिक अन्धविश्वासों और आडम्बरों के विरोध में ऋषि दयानन्द अकेले ही चले। इन तीनों महापुरुषों ने अकेले ही धार्मिक क्रान्ति का शँख फूँका और उसमें वे सफल हुये, क्योंकि वे पूर्णतः धर्म और सत्य के अनुगामी थे।

इसी प्रकार गादीपति बिहारी जी ने अपने पद और जनमत के अभिमान में अनेक निर्दोष सुन्दरसाथ (धारा भाई, राम जी भाई) को समाज से निकाल रखा था, श्री जी ने अपनी शरण में उन्हें रखकर अपना आत्मिक प्रेम दिया। ऐसे युग में जब आध्यात्मिक शिक्षा और संस्कारों से रहित गादीपति बिहारी जी की कृपा के बिना परमधाम और धाम धनी को पाने की बात सोची भी नहीं जाती थी

तथा कोई भी व्यक्ति बिहारी जी के सम्मुख बोलने का साहस नहीं करता था, श्री जी ने उनके अत्याचारों को स्पष्ट चुनौती दी और कहा–

तब श्री जी साहिब ने कहया, जो कोई लूला पांगला साथ।

इन्द्रावती न छोड़े तिनको, पहुंचावे पकड़ हाथ।।

बीतक ३१/२१

एक दिन ऐसा भी समय आया, जब सत्य की राह पर चलने वाले श्री महामति जी के साथ पन्ना जी पहुँचते–पहुँचते पाँच हजार की भीड़ इक्ट्ठी हो गयी और उधर अपनी गादी का अभिमान करने वाले बिहारी जी की गादी भविष्य में समाप्त हो गयी। श्रीमुखवाणी में कहा है–

इन्द्रावती बाई कहे धामना साथनो, हूँ नमी नमी लागूं पाये।

रास ७/१२

ऐसे परमधाम के सुन्दरसाथ को जो कोई व्यक्ति अपने पद, पैसे, और जनमत के बल पर प्रताड़ित करता है और निष्कासित करता है, उसके शिर पर गुनाहों का ऐसा बोझ लद जाता है जिसका कोई भी प्रायश्चित नहीं है। ऐसे व्यक्ति पर कभी भी श्री राज जी की मेहेर नहीं होती।

किसी निर्दोष व्यक्ति को प्रताड़ित या निष्कासित करने अथवा शरणागत को दुत्कारने का क्या परिणाम होता है, एक दृष्टान्त द्वारा बहुत अच्छी प्रकार समझा जा सकता है–

एक नाला बहा जा रहा था। सामने एक झील दिखायी पड़ी। नाले ने उसमें प्रवेश करना चाहा, तो

झील बिफर पड़ी। तुम्हारे जल से दूर से दुर्गन्ध आती है। मैं अपने में नहीं मिला सकती , क्योंकि मेरा भी जल गन्दा हो जायेगा। निराश गन्दा नाला सागर के पास पहुँचा। सागर ने शरण दी। गन्दा नाला सागर में मिलकर सागर का स्वरूप हो गया, जबकि झील ग्रीष्म ऋतु में पूरी तरह सूख गयी।

१२. अनन्त दया ही परब्रह्म की पहचान

सच्चिदानन्द परब्रह्म दया के सागर हैं। यद्यपि वे सुख–दुःख से रहित आनन्द स्वरूप हैं, फिर भी जिस महामति जी के तन में विराजमान होकर उन्होंने लीला की, उस तन को इस जगत के प्राकृतिक नियमों में बँधकर कष्ट उठाना ही पड़ा।

कामा पहाड़ी से उदयपुर जाते समय श्री जी को कई दिनों तक भूख सहनी पड़ी। इसी प्रकार उदयपुर में फकीरी वेश धारण करना पड़ा। जब वे सुन्दरसाथ के साथ मन्दसौर पहुँचे, तो इब्राहिम की चुगलखोरी के कारण कई माह तक भिक्षा के सहारे सबको गुजर करना पड़ा।

जिनकी चरण-धूलि पाने के लिये देवी-देवता कठोर तप करते हैं लेकिन पा नहीं पाते, वही परब्रह्म अपने आवेश स्वरूप से मानव तन में विराजमान होकर अपनी आत्माओं को ब्रह्मज्ञान से जाग्रत कर रहे हैं और इस कार्य में उस तन को सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, अपमान सभी कुछ झेलना पड़ रहा है। जिस परमधाम के आनन्द की कल्पना करने में मानवीय बुद्धि सर्वथा असमर्थ है, उस धाम के वासी ब्रह्ममुनियों को जाग्रत

करने हेतु दया के सागर परब्रह्म महामति जी के धाम हृदय में साक्षात् लीला कर रहे हैं। वस्तुतः जो जितना ही महान होता है, वह उतना ही दयालु और प्रेम का स्वरूप होता है।

१३. विनम्रता

महाराजा छत्रसाल जी की शोभा ब्रह्ममुनियों में सर्वोपरि है। किसी व्यक्ति को अनायास ही महानता नहीं मिला करती। इस स्थिति तक पहुँचने के लिये धर्म की अनेक कसौटियों से होकर गुजरना पड़ता है। यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि रूप या धन द्वारा कोई व्यक्ति महान नहीं माना जाता, बल्कि मन, वाणी, और कर्म से जो व्यक्ति जितना ही विनम्र और निर्मल होगा, वह उतनी

ही महानता की ऊँचाई तक पहुँचेगा।

श्री जी के स्वरूप की वास्तविक पहचान हो जाने के बाद महाराजा छत्रसाल जी ने उन्हें सुखपाल में बैठाया और स्वयं कहार के रूप में कन्धा लगाया।

चौपड़े की हवेली मिने, तहां पधराए श्री राज।
चले आप सुख पाल ले, कांध पर कुंवर महाराज।।

बीतक ६०/४९

अक्षरातीत की सेवा तो ठीक है, किन्तु छत्रपति शिवाजी के दरबार में रहने वाले भूषण कवि की पालकी में भी कन्धा लगाना यही सिद्ध करता है कि महाराजा छत्रसाल जैसी विनम्रता दुनिया में किसी विरले को ही प्राप्त होती है। उनकी इस महानता पर भूषण कवि के मुख से अनायास ही निकल पड़ा था–

शिवा को सराहूं कि सराहूं छत्रसाल को।

महाराजा छत्रसाल जी द्वारा राजकवि भूषण जी के सम्मान की उस घटना को देखकर उन लोगों को आत्म–मन्थन करना चाहिए, जो अपने पद और पैसे के अहंकार में विद्वानों को अपना नौकर समझते हैं।

१४. साधना

परमहंसों में अग्रगण्य महाराज श्री गोपाल मणि जी का जन्म बिहार के मधुबनी जिले में हुआ था। लगभग सोलह वर्ष की आयु में तीव्र वैराग्य होने पर आपने गृह त्याग कर दिया तथा सन्त–महात्माओं के साथ परिभ्रमण करने लगे। अन्त में हिमालय में एक योगिराज के सान्निध्य में आपने लम्बी–लम्बी समाधियाँ लगायीं,

फिर भी आपको शान्ति प्राप्त नहीं हुयी। आपने सूक्ष्म शरीर से पृथ्वी का काफी भ्रमण भी किया। जब आपकी आयु २३८ वर्ष की थी, तो धनी की प्रेरणा से आप पन्ना (श्री पद्मावती पुरी धाम) पधारे। आपके धाम हृदय में प्रियतम अक्षरातीत का वास हो गया। आपके तन से कई चमत्कारी लीलायें हुयीं। आपने लगभग ३०२ वर्ष की उम्र में अपनी लीला समाप्त की।

१५. संकल्प की दृढ़ता

परमहंस महाराज श्री युगलदास जी का जन्म दतिया में हुआ था। कुछ समय तक गृहस्थ जीवन व्यतीत करने के बाद अचानक आपको वैराग्य हो गया और हमेशा ध्यान–साधना में रहने लगे। ऐसी मान्यता है कि तीन

दिनों तक निराहार विरह में रहने के बाद श्री प्राणनाथ जी ने दर्शन देकर उनके परात्म के स्वरूप की पहचान करायी।

इस घटना के बाद उनमें ध्यान–विरह की प्रवृत्ति बढ़ती ही गयी। आपने कई ग्रन्थों की रचना की है, जो परमधाम की शोभा एवं लीला से सम्बन्धित हैं। अन्ततोगत्वा विरह की तीव्र अवस्था में आपने अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली। धाम धनी ने उन्हें दिव्य दृष्टि प्रदान की, जिसके द्वारा उन्होंने परमधाम का विस्तृत वर्णन किया। तत्पश्चात् धाम धनी के साक्षात् प्रकट होने पर अखण्ड दण्डवत् प्रणाम कर लिया।

१६. सद्गुरू महिमा

अज्ञानता के अन्धकार से परिपूर्ण इस जगत में सच्चिदानन्द परब्रह्म का साक्षात्कार कर लेना जीवन की सर्वोपरि उपलब्धि है। ब्रह्ममुनियों के समाज में परमहंस महाराज श्री राम रतन दास जी का जीवन वृत्त एक ऐसे उज्ज्वल नक्षत्र की तरह है, जो सभी सुन्दरसाथ को अपनी ओर सम्मोहित किये हुये है।

महाराज श्री राम रतन दास जी वि.सं. १९७० में मात्र १९ वर्ष की अवस्था में अपनी जन्म भूमि (जड़ौदा पाण्डा, जिला सहारनपुर, उ.प्र.) को छोड़कर चल दिये। हृदय में तड़प थी अपने प्रियतम अक्षरातीत को पाने की। कोई सच्चा मार्गदर्शक न मिल पाने से पैदल चलते हुये वे जगन्नाथ जी के दर्शन हेतु पुरी पहुँचे। वहाँ पर पण्डों और व्यवस्थापकों का व्यवहार अति कटु था। जड़ मूर्ति के

दर्शन से उनकी प्यास नहीं मिटी और मन्दिरों के प्रति अश्रद्धा हो गयी। एक ब्रह्मनिष्ठ पूर्ण सद्गुरू की उन्हें चाहत थी, जो धाम धनी का दीदार करावे।

परमहंस महाराज जी वहाँ से चलकर दक्षिण भारत की तरफ चल दिए। मार्ग में वे कई-कई दिन पर भोजन करते थे। एक बार तो उन्होंने आठ दिन केवल जल पर ही गुजारे। शरीर हड्डियों का ढाँचा बन चुका था। दिन भर पैदल चलना और रात्रि को वृक्षों के नीचे ध्यान करना, यही उनकी दिनचर्या थी। ऐसे भी दिन आये, जब उनकी कमर में दो अँगुल की लँगोटी भी नहीं रही। अति कठोर साधना में समय बीतते-बीतते उन्हें दो बार योगिराज शिव तथा एक बार हनुमान जी का साक्षात्कार हुआ, किन्तु महाराज जी ने उनकी तरफ कोई लगाव नहीं रखा, क्योंकि उनकी चाहत तो केवल अक्षरातीत में थी।

जगन्नाथपुरी से चलकर महाराज जी बालाजी, ऋष्यमुक पर्वत, दाहोद, गोधरा, अजमेर, पुष्कर होते हुये दो वर्ष बाद घर वापस आये। अपने ग्राम से बाहर दूसरे जूड़ ग्राम में वे छः वर्ष तक रहे। इसके पश्चात् वि .सं. १९७८ में इस दृढ़ निष्ठा के साथ उन्होंने गृह त्याग किया कि या तो अपने प्रियतम धाम धनी को पा लेंगे या अपना शरीर छोड़ देंगे।

पहले वाले मार्ग से चलते-चलते महाराज जी महाराष्ट्र प्रान्त में सोनगिरि पहुँचे। वहाँ पर सद्गुरू श्री नारायण दास जी के सम्पर्क में आने के बाद उन्होंने अपना सर्वस्व सद्गुरू चरणों में समर्पित कर दिया। जिस अक्षरातीत परब्रह्म को वे बड़ी-बड़ी कठोर साधनाओं से भी नहीं पा सके थे, अपने सद्गुरू महाराज जी की कृपादृष्टि से, उन्होंने सरलतापूर्वक उन्हें अपने दिल में

बसा लिया। उनके पास इतना आत्मिक बल था कि वे जो कुछ चाहते या कह देते, वही होता था। इसी क्रम में उन्होंने एक मरे हुये बालक को भी जीवित कर दिया था, जिसके कारण उन्हें अपने सद्गुरू महाराज से झिड़की भी सुननी पड़ी।

अपने सद्गुरू से विदा लेकर कलकत्ता, नेपाल आदि घूमते हुये जब वे अपनी जन्मभूमि आये तो उस समय वि.सं. १९८४ था, अर्थात् ३३ वर्ष से भी कम आयु में उन्होंने अपने हृदय में अक्षरातीत पूर्णब्रह्म को बसा लिया। सद्गुरु की कृपा से अपनी अटूट निष्ठा, कठोर साधना, और प्रेम से इतने कम समय में उन्हें वह अवस्था प्राप्त हो गयी, जिसके लिये प्रायः ४० वर्ष की आयु होने तक की बाट देखी जाती है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि परमहंस महाराज

श्री राम रतन दास जी के चरणों में जो भी एक बार आ गया, वह उन्हीं का होकर रह गया। अध्यात्म की सर्वोच्च ऊँचाई पर पहुँचने के बाद भी उनमें इतनी विनम्रता रही है कि सुन्दरसाथ की जूठन खाने में भी उन्होंने गर्व का अनुभव किया। उनके प्रेम में पागल सुन्दरसाथ को आज भी ऐसा प्रतीत होता है कि महाराज जी एक पल के लिये भी उनसे दूर नहीं हैं।

१७. सेवा और समर्पण

परमहंस महाराज श्री राम रतन दास जी ने शेरपुर ग्राम के बाहर जो आश्रम स्थापित किया, उसमें देश के बँटवारे के पश्चात् आये हुये सुन्दरसाथ ने बहुत अधिक आत्मिक आनन्द लिया। सबने उन्हें प्रेम के मसीहा के

रूप में देखा और अधिकतर ने अपना तन–मन महाराज जी की सेवा में समर्पित कर दिया। इन्हीं में से प्रमुख थे श्री जगदीश चन्द्र जी, जिन्हें बाद में जागनी कार्य में विशिष्ट योगदान के कारण सुन्दरसाथ ने "जागनी रत्न" या "धर्मवीर" आदि सम्बोधनों से सम्बोधित किया।

जब सरकार श्री जगदीश चन्द्र जी अपने सद्गुरू महाराज श्री राम रतन दास जी की सेवा में समर्पित थे, उस समय भण्डारे के समय हर सुन्दरसाथ उनकी सेवा और अनुशासन व्यवस्था को देखकर दंग रह जाता था। उस समय शेरपुर आने वाला मार्ग कच्चा होता था, जिसको ठीक करने में सरकार श्री जगदीश चन्द्र जी स्वयं फावड़ा और टोकरा उठाये दिन–रात लगे रहते थे। उन्हें अपने खाने–पीने की भी चिन्ता नहीं रहती थी। रात–दिन सेवा में अथक परिश्रम के कारण परमहंस

महाराज जी उन्हें अपना "लोहे का घोड़ा" कहकर प्यार किया करते थे। अपनी सेवा और समर्पण भावना से सरकार श्री जगदीश चन्द्र जी ने अपने सद्गुरू परमहंस महाराज श्री राम रतन दास जी का दिल जीत लिया और बख्शीश में उनके चरण कमलों का प्रेम माँगा। सद्गुरू की कृपा से उन्होंने वाणी की ज्योति तेजी से फैलाई तथा रतनपुरी आश्रम को केन्द्र बनाकर एक सशक्त ज्ञान और अनुशासन प्रिय समाज का निर्माण किया।

नरेन्द्र विद्या वाचस्पति द्वारा लिखित ग्रन्थ "प्रेरक बोध कथाएँ" से कुछ सारभूत अंश प्रस्तुत हैं-

१८. सत्य-निष्ठा

संस्कृत में एक नाट्य ग्रन्थ है "मृच्छ कटिकम्",

जिसके अन्दर चारूदत्त नामक ब्राह्मण के श्रेष्ठ आचरण का वर्णन है। चारूदत्त की सत्यवादिता और सद्व्यवहार के कारण लोग अमानत के रूप में उनके पास अपनी कीमती वस्तुएँ रख जाते थे।

एक बार कोई व्यक्ति अपने बहुमूल्य रत्न चारूदत्त के घर रख गया। दुर्भाग्यवश चारूदत्त के सामान के साथ-साथ धरोहर के रूप में रखे रत्नों की भी चोरी हो गयी। चारूदत्त को अपने सामान की चोरी का उतना दुःख नहीं था, जितना कि दूसरों की धरोहर की चोरी का। चारूदत्त के एक मित्र ने कहा कि धरोहर रखते समय क्या कोई साक्षी था? चारूदत्त ने कहा कि नहीं! तब उस मित्र ने कहा कि जब वह व्यक्ति अपने रत्न लौटाने के लिये कहे तो कह देना कि मेरे पास रखे ही नहीं थे। इस पर चारूदत्त ने उत्तर दिया कि मेरे लिये

सत्य ही सर्वोपरि है। मैं झूठ बोलकर अपने चरित्र को कलंकित नहीं होने दूँगा। भले ही मुझे भीख माँगनी पड़े, लेकिन मैं धरोहर की सम्पत्ति अवश्य ही लौटाऊँगा।

१९. अभिमान–शून्यता ही श्रेष्ठता की पहचान है

एक बार फ्रांस के सम्राट हेनरी चतुर्थ किसी कार्यक्रम में जा रहे थे। रास्ते में एक भिक्षुक ने अपना टोप उतारकर तथा सिर झुकाकर फ्रेंच सम्राट को प्रणाम किया। सम्राट ने भी उसी प्रकार सिर झुकाकर उत्तर दिया। इस पर एक अधिकारी ने आश्चर्यचकित होकर पूछा कि क्या आपका एक गरीब भिखारी को इस प्रकार का अभिवादन करना ठीक है?

इस पर फ्रांस के सम्राट हेनरी चतुर्थ ने उत्तर

दिया– सभ्यता या शिष्टाचार विनम्रता में है, झूठे दिखावे के बड़प्पन या अहंकार में नहीं।

इस सामान्य सी घटना से हमें यह शिक्षा मिलती है कि सबमें एक ही प्रकार के चैतन्य को देखते हुये किसी को भी छोटा नहीं समझना चाहिए। यदि हम किसी से सम्मान के आकांक्षी हैं, तो हमें पद–पैसे का अहंकार छोड़कर उसका सम्मान करना होगा।

२०. अहंकार लघुता की पहचान है

एक बार संस्कृत के महान विद्वान कवि कालिदास जी को अपनी विद्वता का अभिमान हो गया। वे अपने को विश्व के सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में दर्शाना चाहते थे। उनके एक समकालीन कवि ने उन्हें चुनौती दे दी कि यदि आप

मुझे हरा देंगे तो आपको सर्वश्रेष्ठ कवि मान लिया जायेगा। कालिदास जी उस कवि को हराने की इच्छा से पैदल चल पड़े। मार्ग में पानी पीने हेतु जब वे एक कुँए पर गये तो पनिहारिन ने पूछा– आप कौन हैं? कालिदास ने उत्तर दिया– मैं बलवान हूँ। वह बोली अन्न और जल ही प्राणियों को शक्ति देते हैं। वास्तव में वे ही बलवान हैं। आप में कौन सा बल है? कालिदास जी को मौन रहना पड़ा।

कुछ दिनों बाद दूसरे रास्ते से अपने गन्तव्य की ओर चले। पुनः प्यास लगने पर किसी कुँए पर गये। पनिहारिन ने पूछा– आप कौन हैं? उन्होंने उत्तर दिया कि मैं तो एक निर्बल आदमी हूँ। पनिहारिन हँसते हुये बोली– निर्बल तो गाय और महिला होती है, आप कैसे निर्बल हैं? इसका भी उत्तर कालिदास जी से नहीं हो

सका।

तीसरी बार अपने गन्तव्य पर जाते समय वे जंगल में भटक गये। एक झोपड़ी में उन्हें एक वयोवृद्ध माता मिली। उसने कालिदास से पूछा कि तुम जंगल में क्यों भटक रहे हो? तुम्हारा परिचय क्या है? कालिदास ने उत्तर दिया कि मैं एक यात्री हूँ। बूढ़ी माँ बोल उठी– तुम कैसे यात्री हो? वास्तविक यात्री तो सूर्य और चाँद हैं, जो कभी भी नहीं रुकते।

कालिदास जी के पास इसका कोई भी उत्तर नहीं था। उनकी विद्वता का अहंकार समाप्त हो गया। उन्हें आभास हो गया कि जब सामान्य महिलाओं को वे ठीक से उत्तर नहीं दे सके तो उस श्रेष्ठ कवि का कैसे मुकाबला करेंगे।

विनम्रता ही श्रेष्ठता की पहचान है। विद्वता की शोभा विनम्रता से है। स्वयं को ज्ञान के सागर में एक बूँद से भी छोटा मानकर कभी भी अहंकार नहीं करना चाहिए।

२१. सच्ची मानवता

महात्मा बुद्ध के एक शिष्य ने उनके चरणों में प्रणाम कर धर्म प्रचार हेतु ऐसा स्थान माँगा, जहाँ क्रूर कर्म करने वाले लोग रहते हों।

बुद्ध जी ने कहा– वे लोग तुम्हें गाली देंगे। तुम्हें बुरा–भला कहेंगे। शिष्य ने उत्तर दिया– यह उनका उपकार होगा। मैं उनकी गालियों को पुष्पवर्षा समझूँगा।

बुद्ध बोले– वे लोग तुम्हें पीट सकते हैं। शिष्य बोला– यह भी उनकी कृपा होगी कि वे मुझे पीटेंगे ही

तो।

पुनः बुद्ध ने पूछा– यदि वे अपने तीक्ष्ण हथियारों से तुम्हें घायल कर देंगे तो तुम क्या करोगे? शिष्य बोला– यह भी उनकी दया ही होगी। वे मुझे घायल ही तो करेंगे।

बुद्ध ने पूछा कि यदि उन निर्दयी लोगों ने तुम्हें मार डाला, तो क्या होगा? शिष्य ने उत्तर दिया कि यह भी उनकी दया ही होगी। इस क्षणभंगुर संसार में शरीर का मोह करना व्यर्थ है। इसके अतिरिक्त स्वयं आत्मघात करना भी पाप है। यदि वे मुझे मारेंगे, तो भी उनका मेरे ऊपर उपकार ही होगा।

गौतम बुद्ध ने प्रसन्न होकर कहा– तुम सच्चे मानव हो। महान वही है, जो दूसरों द्वारा अत्याचार करने के बाद भी अपनी मानवता का त्याग नहीं करता। मुझे

विश्वास है कि तुम अपने प्रेम द्वारा क्रूर लोगों का भी हृदय परिवर्तन कर लोगे।

वस्तुतः प्रेम और सहनशीलता सबसे बड़ा अस्त्र है।

२२. राष्ट्रीय सम्मान

जापान के कुछ छात्र पेरिस विश्वविद्यालय में पूरी निष्ठा के साथ डी.लिट. की तैयारी कर रहे थे। उन्होंने अपनी सभी परीक्षायें दी, शोध पत्र प्रस्तुत किये, और बिना डिग्री लिए हुए जाने को तैयार हो गये। उनसे इसका कारण पूछने पर उनका उत्तर था कि हम विदेशों की डिग्री लेकर अपने देश की परीक्षाओं तथा व्यवस्था का सम्मान नहीं घटाना चाहते हैं। इसलिए हम बिना डिग्री लिये ही जा रहे हैं।

जापानियों की राष्ट्र भक्ति पूरे विश्व में प्रसिद्ध है, तभी तो उनका छोटा सा देश विश्व के विकसित देशों की अग्रणी पंक्ति में खड़ा है। हमारे देश में जरूर कहा जाता है कि "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" अर्थात् माता और मातृभूमि स्वर्ग से भी श्रेष्ठ हैं, किन्तु जहाँ हमारे देश में राष्ट्र भक्त हुए हैं, वहीं आम्भीक, जयचन्द, मानसिंह, जयसिंह, तथा मीर जाफर जैसे व्यक्तियों की भी कमी नहीं रही, जिन्होंने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए देश की स्वतन्त्रता एवं गरिमा को संकट में डाला।

योगिराज अरविन्द का कथन है- "देशद्रोहियों के शरीर से निकलने वाली दुर्गन्ध को संसार के सारे गुलाबों की सुगन्ध भी दूर नहीं कर सकती।" आज भारत के युवाओं में एक वर्ग ऐसा भी है, जिसे अपने राष्ट्रीय स्वाभिमान और गौरव की अपेक्षा वैदेशिक धन अधिक

प्रिय है। यह महान खेद की बात है।

२३. बड़प्पन

महाराष्ट्र में परचुरे शास्त्री धर्मशास्त्रों के बहुत बड़े विद्वान थे, लेकिन कोढ़ रोग से ग्रसित होने के कारण वे अपने परिवार तथा समाज से पूर्णतया उपेक्षित हो गये थे। चिकित्सा द्वारा ठीक न हो पाने की स्थिति में वे निराश होकर बापू के आश्रम सेवाग्राम में आ गये। वे गाँव के पास की एक निर्जन सड़क पर लेट गये।

सभी गाँव वालों को तथा आश्रम वालों को इसकी सूचना मिली। सभी उनको दूर से खड़े होकर तड़पते हुए देखते रहे, किन्तु पास कोई भी नहीं आया। जैसे ही महात्मा गाँधी जी (बापू जी) को इसकी सूचना मिली, वे

सारा काम छोड़कर उस सड़क पर पहुँचे तथा शास्त्री जी को आश्रम ले आये। अकेले बापू जी ने उनके घावों को धोया तथा मालिश की। वे महीनों तक उनकी सेवा में जुटे रहे। अन्त में काफी समय बाद आश्रम के सदस्यों में हिम्मत आयी तथा थोड़ा बहुत सेवा के कार्य में सहयोग देने लगे, किन्तु स्वयं कभी बापू ने उनको सेवा में सहयोग देने के लिए एक बार भी नहीं कहा। यह महात्मा गाँधी जी के व्यक्तित्व की महानता थी।

२४. सारा वैभव यहीं रह जायेगा

राजकुमार भोज की बाल्यवस्था में ही उनके पिता का देह त्याग हो गया। उन्होंने अपने देह त्याग से पूर्व अपने छोटे भाई मुञ्ज को राज्यभार तब तक के लिए सौंप

दिया, जब तक कि राजकुमार भोज बड़ा न हो जाये।

कुछ समय के पश्चात् मुञ्ज के मन में पाप आ गया कि राज्य का वास्तविक उत्तराधिकारी तो भोज है, इसलिए राज्य सत्ता हमेशा के लिये अपने पास रखने का एक ही मार्ग है- भोज की हत्या कराना। इस उद्देश्य से उसने भोज की हत्या करने के लिए एक मन्त्री को नियुक्त किया। वन में जाकर जब भोज को मृत्यु के लिए तैयार होने को कहा गया, तो उसने अपने रक्त से एक पत्र लिखा, जिसमें लिखित श्लोक का भाव यह था-

सत्युग के महाप्रतापी सम्राट मान्धाता भी इस पृथ्वी से चले गये, त्रेतायुग में समुद्र पर पुल बाँधकर रावण को मारने वाले मर्यादा पुरुषोत्तम राम भी नहीं रहे, द्वापर में युधिष्ठिर जैसे प्रतापी राजा भी नहीं रहे, यह पृथ्वी किसी के साथ नहीं गयी। लेकिन लगता है कि हे मुञ्ज! कलियुग

में आप पृथ्वी को भी अपने साथ ले जाने वाले हैं, अन्यथा एक छोटे से राज्य के लिए इतना पाप कर्म नहीं करते।

इस पत्र को पढ़कर वध करने गये मन्त्री का भी मन बदल गया तथा जब मुञ्ज को यह पत्र पढ़वाया, तो वह फूट-फूट कर रोने लगा और भोज को बुलाकर सिंहासन पर बैठा दिया।

२५. समय का महत्व

नेपोलियन बोनापार्ट अपने गुणों के कारण एक सामान्य व्यक्ति से महान विजेता बन गये। वह समय की कीमत बहुत अच्छी तरह जानते थे। एक बार उनका मन्त्री निर्धारित समय से १० मिनट देर से आया।

नेपोलियन द्वारा देर का कारण पूछने पर मन्त्री ने उत्तर दिया कि श्रीमान् मेरी घड़ी १० मिनट धीमी है, इसलिये देर हो गयी। इस पर नेपोलियन ने कहा कि या तो आप अपनी घड़ी बदल लीजिए या मैं आपको ही बदल दूँगा।

स्पष्ट है, जो समय का मूल्य पहचानकर उसका सम्मान करते हैं और एक क्षण भी व्यर्थ में नहीं खोते , संसार उनका सम्मान करता है।

२६. सच्ची जन सेवा

सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रधानमन्त्री व गुरु आचार्य चाणक्य की कुटिया पर एक दिन एक महात्मा पधारे। उस समय भोजन की वेला थी। चाणक्य ने महात्मा जी से भोजन करने के लिए निवेदन किया। महात्मा जी ने

उनका अनुरोध स्वीकार कर लिया। जो भोजन परोसा गया वह बहुत ही सादा था, थोड़े से चावल, कढ़ी, और एक सब्जी। भोजन में इतनी सादगी देखकर महात्मा जी चाणक्य से बोल ही उठे– आप इतने बड़े साम्राज्य के निर्माता हैं और अति शक्तिशाली प्रधानमन्त्री हैं, फिर भी आपका जीवन इतना सादा क्यों है?

चाणक्य ने उत्तर दिया कि मात्र जनता की सेवा के लिए ही मैं प्रधानमन्त्री बना हूँ। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि मैं राज्य की सम्पत्ति का उपयोग करूँ। यह झोपड़ी भी मैंने अपने हाथों से ही बनायी है।

महात्मा जी ने पूछा कि क्या आप अपनी आजीविका के लिये भी कुछ करते हैं? आचार्य ने उत्तर दिया– मैं ग्रन्थों की रचना करता हूँ। मैं प्रतिदिन राज्य के लिये आठ घण्टे तथा अपने परिवार के लिये चार घण्टे

कार्य करता हूँ। मेरी हमेशा यही कोशिश रहती है कि राज्य में कोई भी दुःखी न रहे।

महात्मा जी ने कहा– पास के गाँव वाले बहुत दुःखी हैं, क्योंकि कोई चोर रात को उनके कम्बल चुरा ले जाता है।

आचार्य चाणक्य ने उन दुःखी गाँव वालों के लिये राजभण्डार से कम्बल मँगवाये। रात को वे सारे कम्बल उनकी कुटिया में ही रखे थे। जब रात को चोर उन कम्बलों को चुराने के लिए कुटिया में घुसा, तो उसने देखा कि चाणक्य तथा उनकी माता और पत्नी पुराने कम्बलों को ही ओढ़कर सो रहे थे। चाणक्य की स्वार्थहीनता को देखकर चोर को बहुत पश्चाताप हुआ और अगले दिन जब गाँव वाले जगे, तो उन्होंने देखा कि उनके कम्बल उनके घरों के दरवाजों के बाहर पड़े थे।

मौर्य साम्राज्य में उस घटना के बाद कोई चोर नहीं रह गया और लोगों ने ताले लगाना भी बन्द कर दिया।

वर्तमान काल में प्रायः अधिकतर सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओं में विवाद की स्थिति है। इसका मुख्य कारण है– वर्चस्व की होड़ तथा सामाजिक एवं धार्मिक सम्पत्ति का अपने व्यक्तिगत स्वार्थ हेतु दुरुपयोग करना। संस्थाओं को विवादरहित बनाने का एक ही मार्ग है कि ट्रस्टों के विशिष्ट पदाधिकारी एवं विद्वान चाणक्य की तरह आर्थिक पवित्रता एवं निस्वार्थ सेवा का मार्ग अपनायें। धार्मिक सम्पत्ति का व्यक्तिगत हित में दुरुपयोग करना महापाप है।

२७. बाधाओं से हार नहीं मानना चाहिए

यदि आपका मन स्वस्थ और शक्तिशाली है, संकल्पशक्ति दृढ़ है, सच्चिदानन्द परब्रह्म पर अटूट निष्ठा है, तो शारीरिक अक्षमता के बावजूद भी आप महान कार्य कर सकते हैं।

पोलियो से ग्रसित हाथ वाले चन्द्रशेखर ने गेंद फेंकने का ऐसा अभ्यास किया कि वह अपने युग में स्पिन गेंद फेंकने वालों में सर्वश्रेष्ठ थे। दुनिया का हर बल्लेबाज उनसे थर्राता था।

दुनिया में सबसे तेज दौड़ने वाले ग्लेन कर्निघम के पाँव बचपन की एक दुर्घटना में बेकार हो गये थे। चिकित्सा के सारे प्रयासों के असफल रहने पर भी इस पँगु बालक ने फैसला किया कि वह दौड़ेगा और उसने

तेज दौड़ने के सारे रिकार्ड तोड़ डाले।

मिल्टन और सूरदास जैसे कवि अन्धे थे। बीथोवन बहरा था। आचार्य नरेन्द्र देव तथा राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र बाबू को दमा था, लेकिन प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझते हुए ये सभी सामान्य मानव से महामानव बन गये।

यह प्रश्न मन में कौंधा करता है कि हम अपने स्वस्थ शरीर, आँख, कान, हाथ–पैर का सदुपयोग कब करेंगे? क्या पशुओं के रक्त और आह–मिश्रित सौन्दर्य प्रसाधनों से ही हम अपना श्रृंगार करते रहेंगे या अपनी आन्तरिक शक्तियों का विकास कर ज्ञान और प्रेम से अपना श्रृंगार करते हुए ब्रह्मवाणी की ज्योति फैलायेंगे।

२८. उचित समय

भिक्षु उपगुप्त शान्त भाव से राजपथ पर जा रहे थे। उनके व्यक्तित्व से सभी नगरवासी बहुत प्रभावित थे। उनके अनुपम सात्विक सौन्दर्य से नगरवधु नृत्यांगना वासवदत्ता सम्मोहित हो गयी। वह अपने युग की श्रेष्ठतम सुन्दरी थी। वह उपगुप्त के पास पहुँचकर बोली– मेरा तन, मन, धन आपको समर्पित है। कृपया घर पधारकर मुझे कृतार्थ करें।

भिक्षु उपगुप्त ने उस विश्व–सुन्दरी की ओर एकबार देखकर कहा– मैं तुम्हारे पास अवश्य आऊँगा, किन्तु अभी नहीं। इतना कहकर वे वहाँ से चल दिए।

समय चक्र के परिवर्तन से नगरवधु वासवदत्ता का सौन्दर्य, महल, एवं धन–सम्पत्ति सब कुछ नष्ट हो गये।

वह नदी के किनारे असहाय अवस्था में भूख और रोग से व्याकुल होकर पड़ी थी। उसके शरीर से दुर्गन्ध आ रही थी तथा वह भयंकर पीड़ा से कराह रही थी। लोग घृणा के कारण दूर से ही उससे मुँह फेर लेते थे। ऐसे समय में भिक्षु उपगुप्त उसके पास पहुँचे और बोले– वासवदत्ता! मैं आ गया हूँ। बड़े कष्ट से कराहती हुई वासवदत्ता ने कहा– आपने बहुत देर कर दी। अब मेरे पास रूप, यौवन, धन आदि कुछ भी तो नहीं है।

उपगुप्त बोले– भद्रे! यही उपयुक्त समय है। ऐसे ही समय में तुम्हें मेरी जरूरत है। यह कहकर भिक्षु उपगुप्त उसके उपचार में लग गये। कठिन परिश्रम, सेवा, और औषधि उपचार से वासवदत्ता स्वस्थ हो गयी तथा सच्चे धर्म मार्ग पर चल पड़ी।

सन्यास जीवन त्याग, पवित्रता, और तप का जीवन

होना चाहिए। प्रत्येक विरक्त का यह पवित्र कर्त्तव्य है कि वह प्रत्येक नारी को मातृ भावना से ही देखे। यदि विरक्त ही विषयों में फँस जाये तो समाज का विनाश निश्चित है, क्योंकि श्रेष्ठ व्यक्ति जैसा आचरण करता है , समाज उसका ही अनुशरण करता है। भिक्षु उपगुप्त एक आदर्श सन्यासी है, जो विश्व सुन्दरी के भोग-भरे निमन्त्रण को तो ठुकरा देता है, किन्तु उसकी रुग्णता में मातृ भावना से उपचार करता है और उसे धर्म मार्ग में प्रवृत्त कराता है।

२९. गरीब की हाय

दिल्ली का एक बादशाह अपनी प्रजा के सुख-दुख के प्रति बहुत संवेदनशील रहा करता था। एक रात्रि वह

प्रजा का हाल जानने के लिये घूम रहा था। अचानक उसकी दृष्टि अपने शाही खजाने की इमारत की ओर गयी। बादशाह जब वहाँ पहुँचे, तो खजान्ची को हिसाब–किताब में व्यस्त पाया। बादशाह ने कहा कि इतनी रात को हिसाब लगाने की क्या जरूरत है। कल दिन में यह कार्य कर लेना। खजान्ची ने उत्तर दिया– बादशाह! खजाने में कुछ पैसा बढ़ गया है। पता नहीं किस गरीब का गलत पैसा हमारे खजाने में आ गया है। मैं हिसाब इसलिए लगा रहा हूँ कि उस गलत पैसे को खजाने से अलग कर दूँ, अन्यथा उस गरीब की हाय हमारे खजाने में आग लगा देगी। हमेशा ही मेरा यही प्रयास रहता है कि शाही खजाने में एक भी पैसा गलत ढंग से जमा न किया जाये। बादशाह अपने खजान्ची की कर्त्तव्यपरायणता से खुश होकर शयन करने चले गये।

यह सर्वांश सत्य है कि पाप के अन्न तथा धन का उपयोग करने से बुद्धि मलिन हो जाती है तथा विनाशलीला प्रारम्भ हो जाती है। धन मात्र साधन है, साध्य नहीं है। जो संस्थायें अनीतिपूर्वक कमाये हुए धन के दान से चलती हैं, एक न एक दिन उनका पतन अवश्य होता है।

३०. कौन बड़ा?

विश्व विजय का सपना देखने वाला सिकन्दर बहुत अधिक अभिमानी था। उसे यह कदापि सहन नहीं था कि कोई भी उसके सामने गर्व से सिर उठाये। एक बार उसकी भेंट एक वीतराग तपस्वी देवजानस से हुई। महात्मा देवजानस किसी ऐसे स्थान पर लेटे हुए थे, जहाँ

से होकर सिकन्दर को जाना था। सिकन्दर के अंगरक्षक सैनिकों ने आकर कहा– देवजानस! विश्व विजयी सिकन्दर आ रहा है। तुम उठकर उसका स्वागत करो। लेकिन महात्मा देवजानस वैसे ही लेटे रहे। अन्त में कई सैनिकों के साथ सिकन्दर स्वयं आया, लेकिन देवजानस ने उठकर उसका स्वागत नहीं किया। सिकन्दर ने कहा– देवजानस! विश्व को जीतने वाला सिकन्दर तुम्हारे सामने खड़ा है और तुम उसे प्रणाम तक नहीं करते। देवजानस ने लेटे–लेटे ही उत्तर दिया – मेरे दो सेवक हैं– १. लोभ २. काम। मैंने इन दोनों को वश में किया हुआ है, किन्तु मेरे इन दोनों सेवकों ने तुमको अपने वश में किया हुआ है। अब तुम्हीं बताओ कि जब तुम मेरे सेवकों के सेवक हो, तो मैं तुम्हारा कैसे अभिवादन कर सकता हूँ?

सिकन्दर को चुपचाप अपनी सेना सहित चले जाना

पड़ा। वस्तुतः भारतीय संस्कृति में राज्य सत्ता हमेशा ही आध्यात्मिक शक्ति के सामने नतमस्तक रही है। झूठे धन के अभिमान में विरक्त एवं विद्वत वर्ग को यतीम समझना भारतीय संस्कृति का घोर अपमान करना है।

३१. दृढ़ संकल्प

एक बार देश में घोर अकाल पड़ा। वर्षा न होने से सारी जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी। महात्मा गौतम बुद्ध जब श्रावस्ती पहुँचे, तो उन्होंने अपने सभी सम्पन्न शिष्यों को बुलाकर पूछा कि इस भूखी जनता को भोजन कराने का उत्तरदायित्व कौन सम्भालेगा।

नगर सेठ ने उत्तर दिया- इतने लोगों को भला कौन खिला सकता है। मेरे पास मात्र थोड़ा सा अन्न है,

जिससे केवल मेरे परिवार का ही गुजारा हो पायेगा।

आह्वान करने पर राज्य के सेनापति बोले– इतनी जनता का पेट भरने के लिए मेरे पास भी कुछ नहीं है। किसानों ने उत्तर दिया– सूखे के कारण सारी फसल सूख गयी है। हमें तो अपने भूमि–कर चुकाने की चिन्ता सता रही है।

सभी धनिकों एवं जनता के नेताओं द्वारा किसी भी प्रकार की सहायता करने से इन्कार कर दिये जाने पर भिखारिन सुप्रिया हाथ जोड़कर बोली– भगवन! मैं भूखों को भोजन दूँगी। मैं स्वयं धनहीन हूँ, लेकिन मुझे इसकी कोई भी चिन्ता नहीं है। मेरी सम्पत्ति और अन्न आपके घरों में है। मैं घर–घर से दाना–दाना एकत्र करके सबको खिलाऊँगी और किसी को भी भूख से मरने नहीं दूँगी।

सामान्यतः यही देखा जाता है कि श्रद्धा और समर्पण से हीन धनिकों का धन घर में पड़ा–पड़ा सड़ता रहता है तथा मानवता की भलाई के कार्यों में उसका सदुपयोग नहीं हो पाता। इसके विपरीत श्रद्धालु एवं परोपकारी लोगों का धन जनकल्याणकारी कार्यों में खर्च हो जाता है। ऐसा ही धन सार्थक है।

३२. आदर्श चरित्र

भारतीय संस्कृति में हमेशा ही परनारी को मातृ–दृष्टि से देखा गया है। लक्ष्मण, अर्जुन, महाराजा छत्रसाल, तथा शिवाजी अपने आदर्श चरित्र के कारण सर्वपूज्य हैं। जब लक्ष्मण जी के सामने पहचान के लिये वे वस्त्र और आभूषण लाये गये जो सीता जी ने अपहरण

के समय पुष्पक विमान से पहाड़ी पर फेंके थे, तो उन्हें देखकर लक्ष्मण जी कहते हैं–

नाऽहं जानामि केयूरे नाऽहं जानामि कुण्डले।

नूपुरे त्वाभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्।।

अर्थात् मैं न तो बाजूबन्दों को पहचानता हूँ और न कानों के कुण्डलों को ही जानता हूँ। मैं तो केवल चरणों के नूपुरों (बिछुओं) को ही जानता हूँ कि ये सीता जी के हैं, क्योंकि उनके चरणों में प्रणाम करते हुए मैं इन्हें प्रतिदिन देखा करता था।

महाराजा छत्रसाल जी ने पुत्र की कामना रखने वाली अति सुन्दर रमणी को माँ कहकर सम्बोधित किया कि आज से यह छत्रसाल आपका पुत्र है।

छत्रपति शिवाजी के समक्ष जब बीजापुर के नवाब

मुल्ला अहमद की अति सुन्दर पुत्रवधु गौहरबानो लायी गयी, तो शिवाजी के मुख से अपने लिये माँ का सम्बोधन सुनते ही गौहरबानो की आँखों में आँसू आ गये और उसने आशीर्वाद की मुद्रा में कहा– शिवा! तुमने अपने मन की कमजोरियों पर विजय प्राप्त की है। एक दिन तुम अपने शत्रुओं को भी निश्चित ही जीत लोगे।

अमेरिका प्रवास के दौरान स्वामी विवेकानन्द के कमरे में रात्रि को एक अर्धनग्न युवती ने प्रवेश किया और अपनी मनोइच्छा व्यक्त की। विवेकानन्द ने उत्तर दिया कि मैं उस देश का सन्यासी हूँ, जिस देश में अर्जुन जैसे गृहस्थ भी स्वर्ग की सर्वश्रेष्ठ अप्सरा उर्वशी को माँ कहकर सम्बोधित करते हैं। मैं सन्यासी होकर अपने भगवे वस्त्रों पर दाग क्यों लगाऊँ।

यह कहावत अक्षरशः सत्य है कि "मन जीते जग

जीत" अर्थात् अपनी इन्द्रियों सहित मन को जीतने वाला ही सारे विश्व को जीतकर अपनी विचारधारा फैला सकता है। सुन्दरसाथ में अग्रगण्य विद्वत वर्ग एवं विरक्त वर्ग से यही आशा की जाती है कि वे धाम धनी के प्रेम में स्वयं को डुबोकर जितेन्द्रियत्व प्राप्त करें, तभी श्रीमुखवाणी का तीव्र गति से प्रचार हो सकेगा। इन्द्रियों के अधीन रहने पर कोई भी महान कार्य होना सम्भव नहीं है।

३३. अलौकिक इच्छा

एक बार देश में अकाल पड़ा। उस समय राजा रन्तिदेव का शासन था। वे बहुत अधिक धार्मिक थे। अपना सम्पूर्ण खजाना उन्होंने अपनी प्रजा की भूख

मिटाने में समाप्त कर दिया। अन्ततोगत्वा अपनी पत्नी एवं पुत्र को साथ लेकर जंगल में चले गये। अड़तालीस दिनों के बाद कहीं से उन्हें भोजन प्राप्त हुआ। पत्नी और पुत्र सहित जैसे ही वे भोजन करने के लिये तैयार हुए, एक भिक्षुक ने उपस्थित होकर भोजन की माँग कर ली। राजा रन्तिदेव ने आधा भोजन उसे दे दिया। पुनः जैसे ही भोजन करने को तैयार हुए, एक चाण्डाल कुत्तों के साथ उपस्थित होकर भोजन की माँग करने लगा। रन्तिदेव ने अपना सारा भोजन उस चाण्डाल को समर्पित कर दिया।

ऐसी स्थिति में चाण्डाल अपने दिव्य वेश में प्रकट होकर बोला– महाराज! आपका त्याग अनुपम है। आपको मुक्ति का अखण्ड आनन्द प्राप्त हो।

रन्तिदेव ने हाथ जोड़कर कहा–

नत्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।

कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।।

न तो मैं राज्य चाहता हूँ, न स्वर्ग चाहता हूँ, और न मुझे मोक्ष की ही कोई इच्छा है। मैं तो संसार के सभी दुःखी प्राणियों को कष्टों से छुड़ाना चाहता हूँ।

यदि हम परमधाम के सच्चे सुन्दरसाथ हैं, तो हमें रन्तिदेव की ही तरह सारे प्राणियों के कल्याण के लिये ब्रह्मवाणी के अमृत को चतुर्दिक् फैलाना होगा।

३४. परिव्यक्तों से प्रेम करना ही महानता है

राजगृह में सुनीत नामक एक भंगी रहा करता था। वह नगर की सफाई करके अपना गुजारा चलाता था। एक बार जब वह कूड़ा-करकट की सफाई कर रहा था,

ठीक उसी समय गौतम बुद्ध अपने शिष्यों सहित उधर से गुजरे। बुद्ध का दर्शन कर पहले तो वह गदगद हो गया, किन्तु बाद में अपनी जातिगत छोटेपन के कारण सहम गया और छिपने का प्रयास करने लगा। बुद्ध उसके पास स्वयं आए और अपनी अमृतमयी वाणी में बोले– सुनीत! तुम्हारी जीविका का यह साधन बहुत तुच्छ है। तुम इसे छोड़कर भिक्षुक बन जाओ। सुनीत उनके आदेश पर दीक्षा लेकर बौद्ध भिक्षुक बन गया और अध्यात्म में इतना अधिक आगे हो गया कि बड़े–बड़े धनवान एवं राजा भी उसका अभिवादन करते थे। उस छूतछात के युग में एक भंगी को अपना प्रिय शिष्य बनाना गौतम बुद्ध जैसे महान व्यक्ति के लिये ही सम्भव था।

इसी प्रकार एक बौद्ध भिक्षु जो बहुत वृद्ध था , अत्यधिक दस्त से पीड़ित होने के कारण मल–मूत्र से

सना रहता था। दयालुता की मूर्ति गौतम बुद्ध ने अपने प्रिय शिष्य आनन्द के साथ मिलकर उसे जल से नहलाकर स्वच्छ किया और कपड़े पहनाकर बिस्तर पर लिटाया, जबकि अन्य भिक्षु उसके पास जाने तक से कतराते थे। यह महानता की पराकाष्ठा है कि स्वयं गुरु होते भी शक्ति से असमर्थ एक शिष्य के मल-मूत्र को उन्होंने साफ किया। परिव्यक्तों को गले लगाने की भावना ने गौतम बुद्ध को सारे विश्व के लिये पूज्य बना दिया।

३५. श्रेष्ठ व्यक्तित्व

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी राम प्रसाद बिस्मिल पर महर्षि दयानन्द सरस्वती और आर्य समाज का गहरा प्रभाव पड़ा। जब बालक राम प्रसाद आठवीं कक्षा में पढ़ते थे,

तो किसी कार्यवश उन्हें किसी यात्रा पर जाना पड़ा। राम प्रसाद जी ने तीसरे दर्जे का टिकट खरीदा। जब वे प्लेटफार्म पर आये तो सामने ही डिब्बे में उनके कुछ घनिष्ठ साथी बैठे थे। उन मित्रों ने आग्रहपूर्वक राम प्रसाद को अपने डिब्बे में बुला लिया। उसी समय गाड़ी चल दी। बालक राम प्रसाद ने देखा कि जिस डिब्बे में वे बैठे हैं, वह द्वितीय श्रेणी का है। वे बेचैन होकर उठ खड़े हो गये। साथियों ने पूछा– क्या बात है। राम प्रसाद ने उत्तर दिया कि मेरे पास तीसरे दर्जे का टिकट है, जबकि मैं दूसरे दर्जे में यात्रा कर रहा हूँ। इस प्रकार मैं चोरी कर रहा हूँ।

उनके सभी साथी हँस पड़े। एक साथी बोला– इसमें चिन्ता की क्या बात है। यहीं बैठे रहो। राम प्रसाद की बेचैनी में कमी नहीं आयी। अगला स्टेशन आते ही वे उतर पड़े और सीधे स्टेशन मास्टर के पास पहुँचे और

बोले– श्रीमान्! मैं भूलवश दूसरे दर्ज में बैठ गया था, जबकि मेरे पास टिकट तीसरे दर्जे का है। आप नियमानुसार दोनों दर्जों के टिकट का अन्तर मेरे से वसूल कर लीजिए। स्टेशन मास्टर ने राम प्रसाद बिस्मिल की पीठ थपथपाई और कहा– तुम्हारे जैसे बालक पर कोई भी देश गर्व कर सकता है।

बड़ा होकर यही बालक प्रसिद्ध क्रान्तिकारी हुआ, जिसने देश की स्वाधीनता के लिये वेद मन्त्रों का गायन कर भारत माता की जय बोलते हुए फाँसी का फँदा चूम लिया।

३६. तपस्वी विद्वान

हमारे देश में ऐसे त्यागी, तपस्वी विद्वानों की कमी

नहीं रही है, जिन्होंने घोर दरिद्रता में अपना जीवन व्यतीत किया किन्तु कभी किसी के आगे हाथ नहीं फैलाया। मिथिला में न्याय दर्शन के एक प्रसिद्ध विद्वान थे आचार्य उदयन। वे अनेक शास्त्रार्थों के विजेता थे। हमेशा बड़े–बड़े मठाधीशों और धनपतियों से टक्कर लेते रहे। हमेशा सत्य का ही पक्ष लिया। व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये उन्होंने कभी किसी की खुशामद नहीं की।

किन्तु उनका जीवन अभावग्रस्त था। उनकी पत्नी के पास बदलने के लिये वस्त्र भी नहीं थे। एक दिन जब प्रातःकाल उनकी पत्नी अपने फटे हुए वस्त्रों को पहने हुए जा रही थी, तो किसी परिचित ने उनके फटे वस्त्रों को देख लिया। उसकी चर्चा होने पर रोती हुई उनकी पत्नी घर आयी। पत्नी का कष्ट देखकर आचार्य उदयन विचलित हो गये। उन्होंने राजा के यहाँ जाने का निश्चय

किया।

पति–पत्नी दोनों चल पड़े। मार्ग में नदी पड़ती थी। नाविक ने नदी की उतराई माँगी। आचार्य उदयन ने उत्तर दिया कि हम पण्डित ब्राह्मण है। इस बात पर मल्लाह उत्तेजित होकर बोला कि वैसे तो सभी अपने को पण्डित कहते हैं, किन्तु पण्डित तो मिथिला में एकमात्र उदयन है जो बहुत गरीबी झेलने के बाद भी किसी के आगे हाथ नहीं फैलाता। पत्नी ने यह बात सुनते ही आचार्य को घर चलने का संकेत किया। दोनों ही घर लौट आये। पत्नी ने कहा कि हम सभी कष्ट सह लेंगे, लेकिन अब कहीं भी नहीं जायेंगी। मैं आपके यश को न तो कलंकित होने दूँगी और न आपके यशस्वी हाथों को किसी के आगे फैलाने का अवसर दूँगी। स्वाभिमान की रक्षा के लिये अपने कष्टों की परवाह न करने वाले ऐसे

विद्वान आज कहाँ हैं? सच्चा विद्वान वही है जो मन, वाणी, और कर्म से सत्य का ही पक्ष ले, और स्वार्थवश स्वप्न में भी न्याय तथा सिद्धान्तों को गिरवी न रखे।

३७. बड़प्पन

एक बार अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन घोड़े पर बैठकर नगर की स्थिति देखने चले। मार्ग में एक भवन बन रहा था। कुछ मजदूर एक बड़े पत्थर को उठा रहे थे, किन्तु वह उठ नहीं रहा था। मजदूरों का सुपरवाइजर मजदूरों को जोश दिलाने के लिये ललकार तो रहा था, किन्तु खुद नहीं लग रहा था। राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन ने उस सुपरवाइजर को मजदूरों की सहायता करने के लिये कहा। उसने तपाक से उत्तर

दिया– मैं दूसरों से केवल काम लेता हूँ, खुद मजदूरी नहीं करता।

राष्ट्रपति अपने घोड़े से उतरे और उन्होंने पत्थर उठाने के काम में मजदूरों की सहायता की। पत्थर आसानी से उठ गया। अपने घोड़े पर बैठते हुए उन्होंने अपना कार्ड यह कहते हुए सौंपा कि भविष्य में जब कभी आवश्यकता हो तो मुझे इस पते पर याद कर लेना। कार्ड पढ़कर सुपरवाइजर अपनी भूल की क्षमा माँगने लगा। राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन ने कहा– मेहनत करने से कोई भी छोटा नहीं बन जाता। विनम्रता में ही मानवता की सच्ची सेवा है। अपने साथी मजदूरों की सहायता करने से तुम छोटे नहीं बन जाओगे। तुम अपने व्यवहार में परिवर्तन करो, तभी तुम्हें क्षमा मिलेगी। अपने से छोटों को सच्ची मदद देने से ही तुम्हारा बड़प्पन आदर पाएगा।

इस घटना से उन लोगों को सीख लेनी चाहिए, जो स्वयं तो कुछ कार्य नहीं करते, बल्कि अनुशासन के नाम पर अपनी तानाशाही का रूतबा दिखाया करते हैं।

३८. सेवा की सच्ची भावना

महाराजा रणजीत सिंह के शासन काल में पंजाब में एक बार भयंकर अकाल पड़ा। महाराजा ने यह मुनादी करवा दी कि एक बार में कोई भी जरूरतमन्द जितना अनाज उठा सकता हो, राज भण्डार से उठा सकता है। अकाल पीड़ितों की भीड़ अन्न लेने के लिये आने लगी।

उन दिनों लाहौर में एक वृद्ध सज्जन रहा करते थे। अपने सम्पूर्ण जीवन में उन्होंने कभी भी किसी के आगे हाथ नहीं फैलाया था। अन्धेरा होने पर वे राज भण्डार

पहुँचे। उन्होंने बड़ी झिझक से अपनी चादर फैलायी। उसके कोने में थोड़ा सा अनाज बाँधा। अधिक अनाज उठाना उनके लिये कठिन था। इतने में पगड़ी बाँधे एक आदमी आया। उसने कहा– भाई साहब! आपने तो बहुत थोड़ा अनाज लिया। इस पर वृद्ध सज्जन बोले– इससे ज्यादा मैं उठा भी नहीं सकता।

उस आगन्तुक ने वृद्ध सज्जन की गठरी खोल दी। उसमें भरपूर अनाज भर दिया और अपने सिर पर जबरन उठाकर उस सज्जन के घर तक पहुँचा दिया। घर के द्वार पर दो बच्चे खड़े थे। वे बोले– बाबा कहाँ चले गये थे। वृद्ध ने कोई उत्तर नहीं दिया। सिर पर अनाज रखकर आने वाले उस अजनबी ने पूछा– घर में क्या कोई बड़ा लड़का नहीं है। वृद्ध बोला– पुत्र तो था, परन्तु काबुल की लड़ाई में कुर्बान हो गया। यह उसके दोनों पुत्र

है। वह अजनबी बोला– भाई जी! आप धन्य हैं कि आपका बेटा देश के लिये कुर्बान हो गया।

रोशनी में वृद्ध सज्जन ने उस अजनबी को पहचान लिया। वह स्वयं महाराजा रणजीत सिंह थे। वृद्ध सज्जन अपने पोतों से बोले– इनके सामने मत्था टेको, और स्वयं भी प्रणाम करने लगे। वृद्ध ने भावुक होकर कहा– आज मुझसे बहुत बड़ा पाप हो गया, जो आपसे बोझा उठवाया। महाराजा रणजीत सिंह जी ने उत्तर दिया– यह पाप नहीं बल्कि मेरा सौभाग्य है कि मैं एक शहीद के परिवार की सेवा कर सका। आप सबकी सेवा करना मेरा कर्त्तव्य है। जब तक आपका जीवन है, आप हमारे साथ ही रहिए।

३९. अहंकार न करो

मुगल साम्राज्य के कई किलों को जीतने के बाद छत्रपति शिवाजी एक दुर्भेद्य किले का निर्माण करवा रहे थे, जिसमें हजारों लोग काम में लगे हुए थे। शिवाजी के मन में कुछ अहंकार सा हो गया था कि मैं हजारों लोगों का पालन–पोषण कर रहा हूँ।

अचानक शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास जी भी वहाँ से आ निकले। उन्होंने मजदूरों से एक बड़े पत्थर को तोड़ने के लिये कहा। जब पत्थर को तोड़ा गया, तो एक बड़े पोले स्थान से कुछ पानी और एक मेंढक निकला। उसे दिखाते हुए गुरु रामदास जी ने कहा– शिवा! तेरी शक्ति अपरम्पार है। तू उस पत्थर के बीच में बैठे हुए मेंढक को भी पानी पहुँचाता है।

यह सुनते ही शिवाजी समर्थ गुरु रामदास जी के चरणों में गिरकर अपने अपराध की क्षमा माँगने लगे। रामदास जी ने कहा– अपनी बढ़ी हुई शक्ति तथा राज्य को देखकर तुम्हें अभिमान हो रहा है, लेकिन तुम्हें यह समझना होगा कि यह तुम्हारी शक्ति नहीं है, बल्कि उस सर्वशक्तिमान परमात्मा की है, जो असंख्य ब्रह्माण्डों को धारण करने वाला है। तुम्हें जो शक्ति दी गयी है, वह शुभ कार्यों में सम्पादित करने के लिये है, न कि अहंकार करने के लिये। यदि तुम सर्व शक्तिमान परब्रह्म को भूलकर अहंकार करोगे, तो वह शक्ति तुमसे ले ली जायेगी। शक्ति का उपयोग मानवता के कल्याण में करो, इसी में तुम्हारा गौरव है।

श्रीमुखवाणी में स्पष्ट कहा है–

जो कोई मारे इन दुस्मन को, करे सब दुनी को आसान।
पहुँचावे सबों चरन धनी के, तो भी लेना न तिन गुमान।।

किरंतन १०२/११

इसके साथ ही पंचम किरण सम्पूर्ण।

षष्ठी किरण

अमृत–पथ

अब प्रस्तुत है श्री प्राणनाथ जी की ब्रह्मवाणी के अमृत सागर की कुछ बूँदें, जो हमारे लिये अमृतमय पथ का निर्माण करती हैं। इन बूँदों को अपने जीवन में आत्मसात् कर लेने वाला निश्चय ही धन्य–धन्य हो जायेगा।

१. जुओ जीव तणी ए रीत, नव मूके अंधेरनी प्रीत।

धणी अमारो अछरातीत, अमें तोहे न समझया पतीत।।

रास १/५६

पतंगे का सुहाग अन्धेरा होता है। वह उसके बिना एक पल भी जीवित रहना पसन्द नहीं करता। एक हम हैं, जो अपने प्रियतम अक्षरातीत के दीदार बिना रह रहे

हैं। क्या हमारा स्तर पतंगे से भी गया गुजरा है?

२. अंधने आंख रूदे तणी, पण अमने मांहे न बाहेर।

तो निध खोई हाथ थी, जो कीधूं नहीं विचार।।

रास १/६७

अन्धे व्यक्ति की दिल की आँखें होती हैं, किन्तु हमारी न तो बाहर की आँखें हैं और न अन्दर की, अन्यथा हम धनी की पहचान अवश्य कर लेते।

३. केड बांधी ने ज्यारे कीजे उपाए, त्यारे तमें थाओ नरम।

आपोपूं ज्यारे नाखिए आंख मीची, त्यारे तमने आवे सरम।।

खटरुती ७/१८

हे प्रियतम्! जब तक आपको पाने की पूर्ण प्रतिज्ञा नहीं की जाती है, तब तक आप कुछ भी ध्यान नहीं देते।

क्या जब मैं अपनी आँखें बन्द कर लूँगी, तभी आपको शर्म आयेगी अर्थात् तभी आप दीदार देंगे?

४. सेवा कंठ माला घालूं तेह सनंधनी, पोपट करूं नीलडे पांख।

प्रेम तणां पांजरा मांहे घाली, हूं थाऊं साथ ने द्राख।।

खटरुती ८/३१

मेरे धनी! मैं आपको हरे पँखों वाला तोता बनाऊँगी तथा अपने प्रेम रूपी पिंजरे में रखकर पके हुए आम तथा अँगूर खिलाया करूँगी।

५. कहे इन्द्रावती वचन पिउ के, जिन देखाया धाम वतन जी।

अब कोटक छल करे जो माया, तो भी न छूटे धनी के चरन जी।।

प्रकास हिंदुस्तानी ३/८

धनी की वाणी से निज घर की पहचान होती है।

अब माया भले ही करोड़ों उपाय कर ले, लेकिन हम धनी के चरणों को नहीं छोड़ेंगे।

६. साहेब चले वतन को, केहे केहे बोहोतक बोल।

धिक धिक पड़ो मेरे जीव को, जिन देख्या न आंखां खोल।।

प्रकास हिंदुस्तानी ८/४

अखण्ड की वाणी सुनाते-सुनाते प्रियतम अन्तर्धान हो गये, लेकिन मेरे इस जीव को धिक्कार है, जिसने उनकी पहचान नहीं की।

७. मेरे अंध अभागी जीव, तूं क्यों सूता इत।

विध विध धनिएं जगाइयां, अजहूं ना घर सूझत।।

प्रकास हिंदुस्तानी १४/१

मेरे अन्धे बदनसीब जीव! तू अभी भी अज्ञानता की

नींद में सो रहा है। प्रियतम परब्रह्म ने तुझे बार –बार जगाया, फिर भी तू अभी अपने घर की पहचान नहीं कर रहा है।

८. पेहेले तो तूं बुरी करी, अब जिन चूके अवसर।

पिऊ तोको वतन में, बुलावत हैं हंसकर।।

प्रकास हिंदुस्तानी १५/६

मेरे जीव! पहले तूने धाम धनी को नहीं पहचाना, यह तुमसे बहुत बड़ा अपराध हुआ। अब इस सुनहरे अवसर को मत गँवा। धनी की पहचान कर ले। प्रियतम तो तुझे हँसते हुए बुला रहे हैं। अब माया छोड़कर जाग्रत हो जा।

९. गुन धनी के याद कर, पकड़ पिउ के पांए।

सुखे बैठ सुखपाल में, देसी वतन पोहोंचाए।।

प्रकास हिंदुस्तानी १६/२

मेरे जीव! प्रियतम अक्षरातीत की महिमा को याद कर उनके चरणों का आश्रय लो, ताकि प्रेम रूपी सुखपाल में बैठकर अखण्ड घर पहुँच जाओ।

१०. आंखा खोल तूं आप अपनी, निरख धनी श्री धाम।

ले खुसवास याद कर, बांध गोली प्रेम काम।।

प्रकास हिंदुस्तानी २२/१

मेरे जीव! अब तू सावधान हो जा। हृदय में प्रेम भरकर प्रियतम का दीदार कर ले।

११. प्रेम प्याला भर भर पीऊं, त्रैलोकी छाक छकाऊं।

चौदे भवन में करूं उजाला, फोड़ ब्राह्मांड पिऊ पास जाऊं।।

प्रकास हिंदुस्तानी २२/२

मैं जी भरकर प्रेम का रसपान करूँ तथा तीनों लोकों को भी तृप्त कर दूँ। चौदह लोकों के इस ब्राह्माण्ड को छोड़कर अपने प्रियतम से मिलन कर लूँ।

१२. धिक धिक पड़ो मेरी पांचों इन्द्री, धिक धिक पड़ो मेरी देह।

श्री स्याम सुंदरवर छोड़ के, संसार सो किये सनेह।।

प्रकास हिंदुस्तानी २२/९

मेरी इन पाँचों इन्द्रियों सहित शरीर को धिक्कार है क्योंकि इन्होंने प्रियतम अक्षरातीत को छोड़कर संसार से प्रेम किया।

१३. जिन दिल दे मिहीं कातिया, ढील ना करी एक पल।

सोए उठी सैंयन में, हंसते मुख उज्जल।।

प्रकास हिंदुस्तानी २५/११

जिन्होंने सच्चे दिल से प्रियतम का प्रेम रूपी सूत काता है, वे परमधाम में हँसते हुए उठेंगे।

१४. जो कछुए ना समझी, हाथ ना लई पूनी।

आई थी उमेद में, पर उठी अलूनी।।

प्रकास हिंदुस्तानी २५/२४

जिन्होंने वाणी से न तो धनी की पहचान की और न प्रेम से कुछ रिझाया ही, वे परमधाम में शर्मीन्दगी की हँसी के साथ उठेंगी।

१५. सोई ने सोई सूते क्या करो जी, या अगिन जेहेर जिमी मांहे जी।

जाग देखो आप याद करो, ए नींद निगल गई जीव के तांई जी।।

प्रकास हिंदुस्तानी ३०/१

इस विषभरी दुनिया में अज्ञानता की नींद में सो–

सोकर क्या करोगे? अपने मूल स्वरूप को जाग्रत होकर याद करो। यह अज्ञान रूपी नींद तो जीव को ही निगल जाने वाली है।

१६. पिया मोहे स्वांत न आवहीं, ना कछु नैनों नीर।

पिया बिना पल जो जात है, अहे निस धखे सरीर।।

कलस हिंदुस्तानी ४/१

मेरे प्रियतम! आपके विरह में मेरी आँखों के आँसू भी सूख चुके हैं। मुझे पल भर की भी शान्ति नहीं है। आपके बिना एक-एक पल बिताना कष्टकारी है।

१७. ओ खोजे अपने आप को, और खोजे अपनो घर।

और खोजे अपने खसम को, और खोजे दिन आखर।।

कलस हिंदुस्तानी ११/७

परमधाम के ब्रह्ममुनि हमेशा अपने प्रियतम को, अपने निज घर को, एवं अपने मूल स्वरूप को खोजते रहते हैं।

१८. ऊपर काहूं ना देखावहीं, जो दम ना ले सके खिन।

सो आसिक जाने मासूक की, एही मोमिन विरहिन।।

सनंध २२/२३

जो आतम एक पल के लिये भी प्रियतम के बिना नहीं रह सकती, वह अपने प्रेम को जरा भी किसी के सामने प्रकट नहीं करती। माशूक की बात को केवल आशिक ही जान सकता है।

१९. जो किने गफलत करी, जागी नहीं दिल दे।

सो इत दीन दुनी का, कछू ना लाहा ले।।

सनंध २२/६७

जिसने प्रियतम से प्रेम करके अपनी आत्मा को जाग्रत नहीं किया, वह माया में फँसे होने के कारण न तो संसार का सुख पा सकेगा और न ही धनी का।

२०. कोई भूली राह बतावहीं, ताए होसी बड़ा सबाब।

ढिंढोरा फिराइया, कर कर एह जबाब।।

सनंध ३७/४४

अन्धकार में भटकने वाले को जो परमधाम की सच्ची राह बतायेगा, उसे बहुत अधिक पुण्य मिलेगा, अर्थात् ज्ञान दान सर्वोपरि सेवा है।

२१. हो मेरी वासना, तुम चलो अगम के पार।

अगम पार अपार पार, वहाँ है तेरा करार।

तूं देख निज दरबार अपनो, सुरत एही संभार।।

किरंतन ७/१

हे मेरी आतम! तू निराकार के पार अपने निजधाम में चल। वहाँ ही तुझे सुकून मिलेगा।

२२. उत्पन्न प्रेम पारब्रह्म संग, वाको सुपन हो गयो संसार।

प्रेम बिना सुख पार को नाहीं, जो तुम अनेक करो आचार।।

किरंतन ८/६

जिसे प्रियतम अक्षरातीत से प्रेम हो जाता है, उसके लिये संसार स्वप्न के समान झूठा लगने लगता है। भले ही कोई कितना ही दिखावे की बन्दगी और कर्मकाण्ड करे, किन्तु जब तक हृदय में प्रेम नहीं, तब तक अखण्ड का सुख प्राप्त नहीं हो सकता।

२३. दुख प्यारो है मुझको, जासो होए पिउ मिलन।

कहा करूं मैं तिन सुख को, आखिर जित जलन।।

किरंतन १७/६

मुझे वह विरह का दुःख ही प्यारा है, जिससे प्रियतम से मिलन होता है। मैं माया के उस झूठे सुख को लेकर क्या करूँगी, जिससे पश्चाताप के सिवाय अन्य कुछ भी प्राप्त नहीं होता है।

२४. या घर में या बन में रहे, पर कहा करे बिन सतगुर।
तोलो मकसूद क्यों कर होवे, जोलों पाइए ना अखंड घर।।

किरंतन २०/५

चाहे कोई घर में रहे या वन में साधना करे, किन्तु बिना सद्गुरू के अखण्ड घर की पहचान नहीं होती है।

२५. एही सब्द एक उठे अवनी में, नहीं कोई नेह समाना।
पेहचान पिऊ तूं अछरातीत, ताही से रहो लपटाना।।

किरंतन २३/५

सारी दुनिया से एक ही आवाज आ रही है कि प्रेम से बढ़कर कुछ भी नहीं है। हे मेरी आतम! अपने प्रियतम् अक्षरातीत की पहचान करके उनके प्रेम में स्वयं को डुबो दो।

२६. रोम रोम कई कोट अवगुन, ऐसी मैं गुन्हेगार।

ए तो कहीं मैं गिनती, पर गुन्हें को नाहीं सुमार।।

किरंतन ४१/१०

मेरे एक-एक रोम में करोड़ों अवगुण हैं। यह तो समझने के लिये थोड़ी सी गिनती बता दी है, अन्यथा मेरे गुनाह तो अनन्त हैं।

२७. धनी के गुन की मैं क्या कहूं, इन अवगुन पर एते गुन।

महामत कहे इन दुल्हे पर, मैं वारी वारी दुलहिन।।

किरंतन ४१/१६

मेरे बेशुमार अवगुणों के होते हुए भी धनी ने मेरे ऊपर अपार मेहर की है। ऐसे प्रियतम पर मैं बार-बार बलिहारी जाती हूँ।

२८. जिन दयाएं परदा उड़ाइया, मैं फेर फेर मांगू सो मेहर।

इस्क दीजे मोहे अपना, जासों लगे बुजरकी जेहेर।।

किरंतन ६१/१३

मेरे धाम धनी! आपने जिस मेहेर द्वारा मेरे अन्दर की अज्ञानता को हटा दिया, मैं आपसे वही मेहेर चाहती हूँ। आप अपने इश्क में मुझे गलतान कर दीजिए, ताकि मुझे इस दुनिया की बुजरकी जहर की तरह लगने लगे।

२९. मोहे सेवा प्यारी पिउ की, साहेब हो बैठो तुम।

अति सुख पाऊं इनमें, करूं बंदगी खसम।।

किरंतन ६१/१४

मुझे तो अपने प्रियतम की प्रेम भरी सेवा ही प्रिय है। मैं केवल यही चाहती हूँ कि मैं जी भरके आपकी सेवा और इश्क बन्दगी का आनन्द लूँ।

३०. जो पट आड़े धाम के, मैं ताए देऊं जार बार।

कोई विध करके उड़ाइया, ए जो लाग्यो देह विकार।।

किरंतन ७४/६

परमधाम की राह में जो भी रोड़ा (बन्धन) होगा उसे मैं हटा दूँगी। शरीर के विकारों को तो मैंने बहुत प्रयास करके पहले ही उड़ा दिया है।

३१. महामत कहे मेहबूब का, सांचा स्वाद आया जिन।

परीछा तिनकी प्रगट, छेद निकसे बान वचन।।

किरंतन ८७/१६

यह परीक्षा की घड़ी है। जिसको प्रियतम से सच्चे प्रेम का स्वाद मिल गया होगा, सुरता से निज घर देखने की मेरी बात उनके दिल में बैठ जायेगी, शेष को चितवनि कदापि अच्छी नहीं लगेगी।

३२. इन खसम के नाम पर, कई कोट बेर वारूं तन।

टूट टूक कर डारहूं, कर मनसा वाचा करमन।।

किरंतन ९०/७

अपने प्रियतम के ऊपर मैं मन, वाणी, तथा कर्म से करोड़ों बार बलिहारी जाती हूँ।

३३. जो आसिक अर्स अजीम के, तिन सिर नूरजमाल।

परीक्षा तिनकी जाहेर, सबद लगे ज्यों भाल।।

किरंतन ९०/८

जो परमधाम के सच्चे आशिक सुन्दरसाथ हैं, उनके सिर पर धनी हैं। उनके लिए यह परीक्षा की घड़ी है कि वे धनी पर कितनी कुर्बानी कर सकते हैं। कुर्बानी की बातें उनके दिल में चोट कर जाती हैं।

३४. फरेबी लिए जाए, मेरी रूह तूं आंखे खोल।

बीच बका के बैठ के, तैं किनसों किया कौल।।

किरंतन ११०/१

मेरी आतम! तू माया की इस फरामोसी में क्यों इतना डूबी जा रही है? अब सावधान हो जा। परमधाम में तूने धनी से वायदा किया था कि मैं आपको नहीं

भूलूँगी।

३५. एक हक बिना कछु ना रखे, दुनी करी मुरदार।

अरस किया दिल मोमिन, पोहोंचे नूर के पार।।

किरंतन ११७/१७

ब्रह्ममुनि अपने दिल में प्रियतम अक्षरातीत के सिवाय अन्य कुछ भी नहीं रखते। इनके लिए संसार झूठा होता है और यही अक्षर से परे अक्षरातीत के धाम में पहुँचते हैं।

३६. वारी रे वारी मेरे प्यारे, वारी रे वारी।

टूक टूक कर डारूं या तन, ऊपर कुंज बिहारी।।

किरंतन ११८/१

परमधाम के कुञ्ज-निकुञ्ज में विहार करने वाले

अपने अक्षरातीत प्रियतम पर मैं अपना तन–मन कुर्बान करती हूँ।

३७. जो उमत होवे अर्स की, सो नीके विचारो दिल।

बिने अपनी देख के, करो फैल देख मिसल।।

खुलासा ८/१

जो भी परमधाम के सुन्दरसाथ हैं, वे अपने मन में इस बात का अच्छी तरह से विचार कर लेवें कि उन्हें अपना आचरण अपने परमधाम की गरिमा के अनुकूल ही करना चाहिए, दुनिया के जीवों की तरह नहीं।

३८. कहा करूं किनसों कहूं, ना जागा कित जाऊं।

एता भी तुम दृढ़ कर दिया, तुम बिन ना कित ठांऊ।।

खिलवत १/३४

अब मैं क्या करूँ? किससे अपने दिल की बात कहूँ? हे धनी! आपने मेरे मन में यह दृढ़ता कर दी है कि आपके चरणों के सिवाय हमारा कोई और ठौर है ही नहीं।

३९. केहेत केहेलावत तुम ही, करत करावत तुम।

हुआ है होसी तुमसे, ए फल खुदाई इलम।।

खिलवत ३/१३

मेरे प्राणवल्लभ! आपके इल्म से मैंने यह जान लिया है कि मेरे अन्दर बैठकर आप ही कह रहे हैं तथा मुझसे आप ही कहलवा रहे हैं। करने-कराने वाले भी आप ही हैं। जो कुछ हुआ है और भविष्य में भी जो कुछ होगा, वह आपसे ही होगा।

४०. कछु कछु दिल में उपजत, सो तुमही उपजावत।
दिल बाहेर भीतर अंतर, सब तुमही हक जानत।।

खिलवत ४/२

मेरे दिल में जो कुछ भी उपजता है, वह आप ही उपजाते हैं। हमारे दिल की भूत, भविष्य, तथा वर्तमान की सारी बातों को आप ही जानते हैं।

४१. रूहें नींद से जगाए के, पिलावत प्याले फूल।
मुंह पकड़ तालू रूह के, देत कायम सुख सनकूल।।

खिलवत ८/५

आप अपनी आत्माओं को माया से जगाकर उनके न चाहने पर भी इश्क का रस पिलाते हैं तथा अखण्ड सुख देते हैं।

४२. जब आया प्रेम सोहागी, तब मोह जल लेहेरां भागी।
जब उठे प्रेम के तरंग, ले करी स्याम के संग।।

परिकरमा १/५४

हृदय में प्राणवल्लभ अक्षरातीत के लिए प्रेम प्रगट हो जाने पर माया दूर हो जाती है तथा धनी से मिलन हो जाता है।

४३. मैं जो दई तुमें सिखापन, सो लीजो दिल दे।
महामत कहे ब्रह्मसृष्ट को, सखी जीवन हमारा ए।।

परिकरमा ४/२४

मैंने इश्क उपजाने का जो मार्ग बताया है, उसे आचरण में लाओ क्योंकि इश्क ही हमारे जीवन का आधार है।

४४. तखत धरया हकें दिल में, राखूं दिल के बीच नैनन।

तिन नैनों बीच नैना रूह के, राखों तिन नैनों बीच तारन।।

सागर ८/२५

मैं सिंहासन सहित युगल स्वरूप की शोभा को आतम के नेत्रों के तारों अर्थात् दिल में बिठा कर रखूँगी।

४५. फेर फेर सरूप जो निरखिए, नैना होए नहीं त्रिपत।

मोमिन दिल अर्स कहया, लिखी ताले ए निसबत।।

सागर १०/१

ब्रह्मसृष्टियों के दिल को ही परमधाम कहा गया है। उनको ही यह सौभाग्य प्राप्त है कि वे युगल स्वरूप को जी भरकर देखें।

४६. रूहें आइयां बीच दुनी के, धरें नासूती वजूद।

रूहें चाल न छोड़े अपनी, जो कदी आइयां बीच नाबूद।।

सिनगार २३/६४

भले ही परमधाम की आत्माओं ने इस मायावी जगत में आकर माया का तन धारण किया है, किन्तु वे अपनी परमधाम वाली प्रेम की राह नहीं छोड़ सकती हैं।

४७. इस्क हमारा कहां गया, जो दिल बीच था असल।

तिन दिलें सहूर क्यों छोड़िया, जो विरहा न सेहेता एक पल।।

सिनगार २५/११

हमारे परात्म के दिल में जो भी परमधाम का अखण्ड इश्क था, वह अब कहाँ चला गया है? हमारा दिल जो परमधाम में एक पल के लिए भी धनी का विरह सहन नहीं कर सकता था, अब इस विषय पर चिन्तन

करना भी क्यों छोड़ दिया?

४८. गुझ मासूक का आसिक, सो केहेना न कासो होए।
जो कई पड़े कसाले, तो बाहेर मांहें रोय।।

सिनगार १४/१९

सच्चा आशिक अपने माशूक की गुझ बात को कभी भी किसी से नहीं कहता। यदि उसे बहुत कष्ट भी सहना पड़ जाये, तो भी वह छिपकर ही रो लेता है, किसी के सामने प्रकट नहीं करता।

४९. तो कहे सेहेरग से नजीक, खासलखास बंदे हक के।
किए अर्स तन से रूबरू, जो नूर बिलंद से उतरे।।

मारफत सागर ४/७९

परमधाम से आए हुए ब्रह्ममुनि सुन्दरसाथ ही

प्रियतम अक्षरातीत के सच्चे प्रेमी हैं। इनके लिए प्रियतम प्राण की नाड़ी (शाहरग) से भी अधिक नजदीक हैं और यही अपने परमधाम के मूल तनों का साक्षात्कार करते हैं।

५०. महामत कहे ए मोमिनों, जिन जागी भूलो कोए।

राह अर्स इस्क न छोड़िए, ज्यो सोभा लीजे ठौर दोए।।

छोटा कयामतनामा २/१०४

हे सुन्दरसाथ जी! ब्रह्मवाणी के ज्ञान से जाग्रत होने के पश्चात् माया में पुनः मत भूलिए। परमधाम वाली इश्क की राह को स्वप्न में भी मत छोड़िए, ताकि आप यहाँ भी धन्य-धन्य हो सकें और निजधाम में भी।

अब वेद–उपनिषद् की अमृत वाणी के कुछ अंश दिये जा रहे हैं, जो हमें अमृत पथ पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं–

१. तुम्हारी चाल एक हो, तुम्हारी बोली एक हो, तथा तुम्हारा मन एक हो।

> संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
>
> ऋग्वेद १०/१९१/२

२. परम सत्य का चिन्तन पापों का नाश करता है।

> ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति। ऋग्वेद ४/२३/८

३. मेरा यह व्रत है कि मैं असत्य को त्याग कर सत्य को प्राप्त होता हूँ।

> इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि। यजुर्वेद १/५

४. जो दुराचार से नहीं हटा, जिसकी इन्द्रियाँ शान्त नहीं हुईं, जो एकाग्र मन वाला नहीं, जो सावधान नहीं, वह कितना ही बड़ा पण्डित क्यों न हो, ब्रह्मतत्व को नहीं प्राप्त कर सकता। (कठोपनिषद १/२/२३)

५. दुर्बल जीव जब हार जाता है, तब इन्द्रिय वर्ग विद्रोह कर देता है। उस समय पाप उत्पन्न होता है।

अक्षद्रुग्धो राजन्यः पाप आत्मपराजितः।

अथर्ववेद ५/१८/२

६. तुम सभी आपस में सहृदयता, समान विचारधारा, तथा पारस्परिक प्रेम (निर्वैरता) के साथ व्यवहार करो। तुम आपस में वैसे ही प्रेम करो, जैसे तुरन्त उत्पन्न हुए बछड़े से गाय करती है।

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या।।
अथर्ववेद ३/३०/१०

७. जिससे विद्वान एक–दूसरे से पृथक नहीं होते और एक–दूसरे से द्वेष नहीं करते, उस समता का बोध कराने वाले ब्रह्मज्ञान को हम तुम्हारे हृदय में प्रकाशित करते हैं। (अथर्ववेद ३/३०/४)

८. बहुतों को यह ब्रह्मज्ञान सुनने को भी नहीं मिलता। अनेक लोग इसे सुनने पर भी नहीं समझ पाते। इसका उपदेश करने वाला भी दुर्लभ ही होता है। इस ब्रह्मतत्व को पा लेने वाला सचमुच कुशल है। किसी ब्रह्मनिष्ठ से शिक्षा पाकर इसको जानने वाला तो दुर्लभ ही है। (कठोपनिषद् २/२६)

९. जल के मध्य सदा रहने वाले तेरे उपासक को प्यास ने आ घेरा है। दुःखों से बचाने वाले! हे परब्रह्म! कृपा कर, दया कर। (ऋग्वेद ७/८८/४)

संसार में जो भी काम सुख है अथवा जो महान दिव्य सुख है, वे तृष्णा के नाश से उत्पन्न होने वाले आनन्द के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं है।

(योग दर्शन २/४२ व्यास भाष्य)

१०. आत्मिक धन की इच्छा करने वाले केवल परब्रह्म को ही पाने की इच्छा करते हैं। वे मौज मस्ती के साधनों में अपना पैर नहीं रखते।

इन्द्रे कामं जरितारो वसुयवो रथे न पादमा दधु।

सामवेद उ. ८/२/६/२

११. मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि संसार में सुख के सभी साधन (धन, स्त्री इत्यादि) अनित्य व क्षणिक हैं। इन अनित्य पदार्थों द्वारा वह शाश्वत आनन्द नहीं मिल सकता। अतः मैंने अपने हृदय में नाचिकेत अग्नि (संशय रहित परमात्म–प्रेम की अग्नि) जलाई है और इस प्रकार उस अग्नि में इन अनित्य द्रव्यों का होम करके मैंने शाश्वत आनन्द को पा लिया है। (कठोपनिषद् २/१०)

१२. उस एकमात्र सच्चिदानन्द परब्रह्म को जान जाओ। शेष सारी बातें छोड़ दो। वही शाश्वत आनन्द का मूल हैं।

(मुण्डकोपनिषद २/२/५)

१३. यदि सच्चिदानन्द परब्रह्म को नहीं जाना, तो मात्र पढ़ने से क्या लाभ? जो उसे जान लेते हैं, वे शाश्वत शान्ति और समत्व भाव को प्राप्त हो जाते हैं।

यस्तत्र वेद किमृचा करिष्यति य इतद्विदुस्त इमें समासते।

ऋग्वेद १/१६४/३९

१४. मेरा जाना मीठा हो, मेरा लौट आना मीठा हो। मैं मधु जैसी मीठी वाणी बोलूँ और हृदय से भी मधु जैसा मीठा हो जाऊँ।

मधुमन्में निष्क्रमण मधुमन्मे परायणं।

वाचा वदामि मधुमद भूयासं मधुसन्दृशः।।

अथर्ववेद १/३४/४

१५. ब्रह्म में विचरण करने वालों! सत्य पर चलने वालों के लिए मार्ग सुगम और कण्टक रहित होता है। इस सत्य मार्ग पर चलने से तुम्हारा विनाश नहीं हो सकता।

(ऋग्वेद १/४१/४)

१६. हे परब्रह्म! आप सभी भोगों के आनन्दों से भी अधिक आनन्दकारक हैं और तीनों कालों में एक जैसे हैं। इसलिए आपके सिवाय और कौन है, जो मुझे आनन्दित कर सके।

कस्त्वा सत्यों मदानां मंहिष्ठो सत्सदन्धसः।

ऋग्वेद ४/३१/२

१७. उस परब्रह्म को वे लोग नहीं जान पाते जो अज्ञान से ढके होने के कारण व्यर्थ में बातें करते हैं, या शब्दों के ज्ञान मात्र में उलझकर प्रेम भक्ति से दूर रहते हैं , या केवल अपने भौतिक सुखों में ही मस्त रहते हैं।

(ऋग्वेद १०/८२/७)

१८. यह सम्पूर्ण पृथ्वी सत्य के सहारे ही स्थित है।

सत्येनोत्त भिता भूमिः। अथर्ववेद १४/१/१

१९. उठो, जागो, और सर्वोपरि ब्रह्म तत्व को प्राप्त करो। मनीषी लोग इस मार्ग को छुरे की धार पर चलने के समान कठिन बताते हैं। (कठोपनिषद २/१/१४)

२०. श्रद्धा के द्वारा ज्ञान रूपी धन प्राप्त होता है।

श्रद्धा निन्दते वसु।	ऋग्वेद १०/१५१/४

२१. तप के द्वारा ही तपस्वी ऊपर उठता है, अर्थात् उन्नति को प्राप्त होता है।

दिवमारूहत् तपसा तपस्वी।	अथर्ववेद १३/२/२५

२२. हे प्रियतम् परब्रह्म! आप मुझे बुरे आचरण से पूर्ण रूप से हटाइये और मुझे उत्तम चरित्र में स्थापित कीजिए।

परि माग्ने दुश्चरिताद् बाधस्वा मा सुचरिते भज।

यजुर्वेद ४/२८

२३. यदि इस जन्म में परब्रह्म को जान लिया तो जीवन सफल है, किन्तु इस जन्म में यदि ब्रह्म साक्षात्कार न हुआ तो समझो कि बहुत बड़ी हानि हो गयी।

(केनोपनिषद् २/५)

२४. हे जीव! तू ब्रह्म प्राप्ति के लिये ही उत्पन्न हुआ है।

राधसे जज्ञिषे। ऋग्वेद ५/३५/४

२५. हे नारी! नीचे देख, ऊपर मत देख।

अधः पश्यस्व मोपरि। ऋग्वेद ८/३३/१९

२६. पका हुआ पदार्थ पकाने वाले को फिर आ मिलता है, अर्थात् जो जैसा कर्म करता है, उसे वैसा ही फल

प्राप्त होता है। (अथर्ववेद १२/३/४८)

२७. जागना कल्याण के लिए है और सोना विनाश के लिए है।

भूत्यै जागरणम भुत्यै स्वप्नम्।	यजुर्वेद ३०/१७

२८. हम ज्ञानियों का सत्संग करें।

जानता सं गमेमहि।	ऋग्वेद ५/५१/१५

२९. हे पुरुष! अपनी वर्तमान अवस्था से ऊपर उठ। आगे बढ़, नीचे मत गिर।

उत्क्रमातः पुरूष माव पत्थाः।	अथर्ववेद ८/१/४

३०. परस्पर लड़ने वाले विनाश को प्राप्त हो जाते हैं।

(अथर्ववेद ६/३२/३)

३१. मेरी आँखे प्रेम युक्त हैं और मेरा मुख माधुर्य से भरपूर है, अर्थात् मेरी दृष्टि में प्रेम और वाणी में मिठास है।

घृतं में चक्षुरमृतं म आसन्। सामवेद ६१३

३२. हे मानव! तू सर्प के समान कुटिल और भेड़िये के समान क्रूर हिंसक मत बन।

माहिर्भूर्मा पृदाकुः। यजुर्वेद ६/१२

३३. मेरा मन शुभ संकल्प करने वाला हो।

मेमनः शिव संकल्पमस्तु। यजुर्वेद ३४/१

३४. ऐ मेरे मन के पाप! दूर भाग। मुझे खोटी सम्मति क्यों दे रहा है? मुझे कुमार्ग पर क्यों ले जा रहा है?

परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि।

अथर्ववेद ६/४५/१

३५. ब्रह्मचर्य रूप तप द्वारा विद्वान लोग मृत्यु को मार भगाते हैं। (अथर्ववेद ११/५/१९)

३६. धर्म का आचरण करो।

धर्मं प्रयज। ऋग्वेद ३/९६/५

३७. महान सौभाग्य के लिए पुरूषार्थ कर।

उत्क्राम महते सौभगाय। यजुर्वेद ११/२१

३८. मत डर, मत घबरा। (यजुर्वेद १/२३)

३९. हमारे ऊपर न तो आलस्य शासन करे और न बकवास। (ऋग्वेद ८/४८/१४)

४०. बुढ़ापे से पहले मत मर। (अथर्ववेद ३/३०/१७)

४१. मैं द्वेषी के प्रति भी बुरा न करूँ।

मो अहं द्विषते रधम्।	ऋग्वेद १/५०/१३

४२. हे परब्रह्म! तेरी ही मैत्री अमिट है।

तवेद्धि सख्यमस्तृतम्।	ऋग्वेद १/१५/५

४३. धन की खान पाप से नहीं मिलती।

न किल्विषादीषते वस्व आकरः।	ऋग्वेद ५/३४/४

४४. दोनों हाथों से दान दो।

उभयाहस्त्या भर।	ऋग्वेद ५/३९/१

४५. ब्रह्मद्वेषियों की संगति मत कर।

(ऋग्वेद ८/४५/२३)

४६. सदाचारी की वाणी प्रिय मधु बरसाती है।

(ऋग्वेद ९/७५/२)

४७. हम उस आनन्द स्वरूप परब्रह्म के प्रति समर्पित रहें।

कस्मै देवाय हविषा विधेम।	ऋग्वेद १०/१२१/१

४८. हे परब्रह्म! मैं तुमसे विमुख न होऊँ।

(यजुर्वेद ४/२३)

४९. हे ब्रह्मज्ञानी! तूं अनावश्यक अधिक न बोल।

ब्रह्मन् मा त्वं बहु।	यजुर्वेद २३/२५

५०. हे परब्रह्म! तू कभी भी छिपने वाला नहीं है।

कदाचन स्तरी रसि नन्द्र।	यजुर्वेद ८/२

अब प्रस्तुत है, बौद्ध साहित्य के सबसे अधिक चर्चित ग्रन्थ "धम्मपद" के कुछ अंश। यह ग्रन्थ पालि भाषा में है, जिसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत है–

१. मन सभी प्रवृत्तियों का अगुआ है। वे मन से ही उत्पन्न होती हैं। मन उनका प्रधान है। यदि कोई स्वच्छ मन से वचन बोलता है या काम करता है, तो सुख उसका अनुसरण उसी प्रकार करता है जिस प्रकार कभी साथ न छोड़ने वाली छाया। (२)

२. उसने मुझे डाँटा, उसने मुझे मारा, उसने मुझे जीत लिया, उसने मेरा लूट लिया, ऐसा जो मन में बनाये रखते हैं, उनका वैर शान्त नहीं होता है। (३)

३. इस संसार में वैर से वैर कभी भी शान्त नहीं होता, बल्कि मैत्री से ही शान्त होता है। यही सदा का

नियम है। (५)

४. जिसने चित्त के मलों को त्याग दिया है। जो शील में प्रतिष्ठित है, संयम और सत्य से युक्त है, वही काषाय वस्त्र का अधिकारी है। (१०)

५. जैसे ठीक से न छाये हुए घर में वर्षा का जल घुस जाता है, वैसे ही ध्यान भावना से रहित चित्त में राग घुस जाता है। (१३)

६. चाहे कोई भले ही बहुत से ग्रन्थों का पाठ करने वाला हो, किन्तु प्रमाद में पड़कर उसके अनुसार आचरण न करे, तो वह दूसरों की गौवें गिनने वाले ग्वाले की भांति सन्यास का अधिकारी नहीं होता है। (१९)

७. सतत ध्यान का अभ्यास करने वाले नित्य दृढ़ और पराक्रमी वीर पुरुष परमपद निर्वाण का लाभ प्राप्त

करते हैं। (२३)

८. प्रमाद में मत फँसो, काम रति में मत लिप्त होओ। ध्यान करने वाला प्रमाद रहित पुरुष महान सुख को प्राप्त होता है। (२७)

९. जो भिक्षु अप्रमाद में रत है या प्रमाद से भय खाने वाला है, उसका पतन होना सम्भव नहीं है। वह तो निर्वाण के समीप पहुँचा हुआ है। (३२)

१०. जिसका चित्त स्थिर नहीं है, जो सद्धर्भ को नहीं जानता, जिसकी श्रद्धा चंचल है, उसकी प्रज्ञा पूर्ण नहीं हो सकती। (३८)

११. जितना भला माता–पिता या दूसरे भाई–बन्धु नहीं कर सकते, उससे अधिक भलाई ठीक मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है। (४३)

१२. न तो दूसरों के विरोधी वचन पर ध्यान दें और न दूसरों के कृत्य–अकृत्य को देखें, केवल अपने ही कृत्य–अकृत्य का अवलोकन करें। (५०)

१३. जैसे सुन्दरवर्ण युक्त सुगन्ध रहित पुष्प होता है, वैसे ही कथनानुसार आचरण न करने वाले के लिए सुभाषित वाणी निष्फल होती है। (५१)

१४. पुष्प, चन्दन, तगर, या चमेली आदि किसी की भी सुगन्धि उल्टी हवा में नहीं जाती, किन्तु सज्जनों की सुगन्धि उल्टी हवा में भी जाती है। सत्पुरुष सभी दिशाओं में सुगन्धि बहाता है। (५४)

१५. विचरण करते हुए यदि अपने से श्रेष्ठ या अपने समान व्यक्ति को न पायें, तो दृढ़ता के साथ अकेले ही विचरें। मूर्ख से मित्रता अच्छी नहीं है। (६१)

१६. वह काम करना ठीक नहीं, जिसे करने के बाद पछताना पड़े और जिसके फल को अश्रुमुख रोते हुए भोगना पड़े। (६७)

१७. जब तक पाप का फल नहीं मिलता, तब तक मूर्ख उसे मधु के समान मीठा समझता है, किन्तु जब उसका फल मिलता है, तब मूर्ख दुःख को प्राप्त होता है। (६९)

१८. जैसे ताजा दूध शीघ्र नहीं जम पाता, वैसे ही किया गया पाप कर्म शीघ्र ही अपना फल नहीं देता। राख से ढकी हुई आग की भांति वह जलता हुआ मूर्ख का पीछा करता है। (७१)

१९. भिक्षुओं के बीच अगुआ होना, मठों का अधिपति बनना, गृहस्थ परिवारों में पूजित होना, गृही

और प्रव्रजित (सन्यासी) दोनों मेरा ही कहा हुआ माने, सभी प्रकार के काम में वे मेरे ही अधीन रहें, ऐसा मूर्ख का संकल्प होता है, जिससे उसकी इच्छा और अभिमान बढ़ते हैं। (७४)

२०. निधियों को बताने वाले की भांति दोष दिखलाने वाले संयमी, मेधावी पण्डित का साथ करें, क्योंकि वैसे का साथ करने से कल्याण ही होता है, बुरा नहीं। (७६)

२१. जो उपदेश दे, सुमार्ग दिखाये, तथा कुमार्ग से निवारण करे, वह सज्ञनों को तो प्रिय होता है, किन्तु दुर्जनों को अप्रिय होता है। (७७)

२२. बुरे मित्रों का साथ न करो, न अधम पुरुषों का सेवन करो, बल्कि अच्छे मित्रों और उत्तम पुरुषों की

संगति करो। (७८)

२३. जैसे ठोस पहाड़ हवा से नहीं डिगता, वैसे ही पण्डित निन्दा और प्रशंसा से नहीं डिगते। (८१)

२४. धर्म को सुनकर पण्डित लोग गम्भीर, स्वच्छ, निर्मल जलाशय की भांति शुद्ध हो जाते हैं। (८२)

२५. सत्पुरुष सभी प्रकार के रागों को त्याग देते हैं। वे काम भोगों के लिए बात नहीं चलाते। सुख मिले या दुख, पण्डितजन विकारों का प्रदर्शन नहीं करते। (८३)

२६. जो अपने लिये या दूसरों के लिए पुत्र, धन, और राज्य नहीं चाहता और न अधर्म से अपनी उन्नति ही चाहता है, वही शीलवान, प्रज्ञावान, और धार्मिक है। (८४)

२७. जिसने मार्ग तय कर लिया है, जो शोक रहित

तथा सर्वथा विमुक्त है, जिसकी सभी ग्रन्थियाँ क्षीण हो गयी हैं, उसे कोई भी कष्ट नहीं। (९०)

२८. जो ध्यान आदि में लगे रहते हैं, वे घर में रत नहीं होते। वे तो सरोवर को छोड़कर चले जाने वाले हँस की भांति गृह को त्याग देते हैं। (९१)

२९. जिन्हें कोई संग्रह नहीं, जो भोजन में संयत हैं, निर्वाण ही जिनका विचरण स्थान है, उनकी गति आकाश में पक्षियों की गति की भांति अज्ञेय है। (९२)

३०. सारथी द्वारा दमन किये गये अश्व के समान जिसकी इन्द्रियाँ शान्त हो गई हैं, ऐसे अहंकार रहित सन्त की देवता भी चाहना करते हैं। (९४)

३१. जो संग्राम में हजारों मनुष्यों को जीत ले , उससे उत्तम संग्राम-विजयी वही है, जो एक स्वयं अपने

को जीत ले। (१०३)

३२. जब तक पाप का फल नहीं मिलता है, तब तक पापी भी पाप को अच्छा समझता है, किन्तु जब पाप का फल मिलता है, तब उसे पाप दिखायी पड़ने लगते हैं। (११९)

३३. "वह मेरे पास नहीं आयेगा", ऐसा सोचकर पाप की अवहेलना न करें। जिस प्रकार पानी की बूँद-बूँद के गिरने से घड़ा भर जाता है, ऐसे ही मूर्ख लोग थोड़ा-थोड़ा संचय करके पाप के घड़े को भर लेते हैं। (१२१)

३४. जो दोषरहित, शुद्ध, निर्मल पुरुष को दोष लगाता है, उसी मूर्ख को उसका पाप लौट कर लगता है, जैसे कि सूक्ष्म धूलि को हवा के आने के रूख में फेंकने

से वह फेंकने वाले पर ही पड़ती है। (१२५)

३५. न आकाश में, न समुद्र के मध्य में, न पर्वतों की गुफाओं में प्रवेश कर भी, संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ रहकर, पाप कर्मों के फल से प्राणी बच सके। (१२६)

३६. कटु वचन मत बोलो। बोलने पर दूसरे भी वैसे ही तुझे बोलेंगे। प्रतिवाद दुखःदायक होता है। उसके बदले में तुझे दण्ड मिलेगा। यदि तुम अपने को टूटे हुए काँसे की भांति निःशब्द (चुप हो जाना) कर लोगे, तो समझ लेना कि तूने निर्वाण पा लिया। तेरे लिये प्रतिवाद नहीं। (१३३)

३७. जिस पुरुष के सन्देह समाप्त नहीं हुए हैं , उसकी शुद्धि न नंगे रहने से, न जटा रखने से, न कीचड़

लपेटने से, न उपवास करने से, न कड़ी भूमि पर सोने से, न धूल लपेटने से, और न उकड़ू बैठने से ही होती है। (१४१)

३८. अलंकृत रहते हुए भी यदि वह शान्त, दान्त, नियमपूर्वक ब्रह्मचारी, तथा सारे प्राणियों के प्रति दण्ड त्यागी है, तो वही ब्राह्मण है, वही श्रमण है, वही भिक्षु है। (१४२)

३९. कोड़े पड़े उत्तम घोड़े की भांति उद्योगी, संवेगवान, श्रद्धा, आचरण, प्रयत्न, समाधि, और धर्म के विनिश्चय में युक्त बन। विद्या और आचरण से समन्वित हो, स्मृतिवान हो, तो इस महान दुःख रूपी भवसागर को पार कर सकोगे। (१४४)

४०. बिना रुके अनेक जन्मों तक इस संसार में

दौड़ता रहा। इस काया रूपी गृह को बनाने वाली तृष्णा को खोजते हुए बार-बार दुःखमय जन्म में पड़ता रहा। (१५३)

४१. पहले अपने को ही उचित काम में लगावें, बाद में दूसरे को उपदेश दें। इस तरह पण्डित क्लेश को नहीं प्राप्त होगा। (१५८)

४२. सुचरित धर्म का आचरण करें, दुराचरण न करें। धर्मचारी इस लोक और परलोक दोनों जगह सुखपूर्वक रहता है। (१६९)

४३. जो इस संसार को पानी के बुलबुले और मृगतृष्णा के जल की तरह देखता है, उसे यमराज नहीं देखता। (१७०)

४४. एक धर्म (सत्य) का अतिक्रमण कर जो झूठ

बोलता है, परलोक की चिन्ता से रहित उस पुरुष के लिए कोई पाप ऐसा नहीं रह जाता, जो वह न कर सके। (१७६)

४५. जो धीर हैं, ध्यान में लगे हैं, परम शान्त निर्वाण में रत हैं, उन स्मृतिमान बुद्धों को देवता भी चाहते हैं। (१८१)

४६. सहनशीलता और क्षमाशीलता परम तप है। बुद्ध लोग निर्वाण को परम पद बताते हैं। दूसरों का घात करने वाला और उनको सताने वाला प्रव्रजित श्रमण नहीं होता। (१८४)

४७. निन्दा न करना, घात न करना, प्रतिमोक्ष में संयम रखना, भोजन में मात्रा जानना, एकान्तवास, चित्त को योग में लगाना, यही बुद्धों की शिक्षा है। (१८५)

४८. यदि रुपयों की वर्षा होती है, तो भी मनुष्य की कामों (भोगों) से तृप्ति नहीं हो सकती। सभी भोग अल्पस्वाद और दुःखद हैं। ऐसा जानकर पण्डितजन काम भोगों में नहीं रमते। (१८६)

४९. वैरियों में अवैरी हो , अहो। हम सुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं। वैरी मनुष्यों के बीच अवैरी होकर हम विहार करते हैं। (१९७)

५०. विजय वैर को उत्पन्न करती है। पराजित पुरुष दुःख की नींद सोता है, किन्तु जिसके रागादि दोष शान्त हैं, वह पुरुष जय और पराजय को छोड़ सुख की नींद सोता है। (२०१)

५१. निरोग होना परम लाभ है, सन्तोष परम धन है, विश्वास सबसे बड़ा बन्धु है, निर्वाण सबसे बड़ा सुख

है। (२०४)

५२. एकान्त चिन्तन के रस तथा शान्ति के रस को पीकर पुरुष निडर होता है और धर्म के प्रेम रस का पान करके निष्पाप होता है। (२०५)

५३. धीर, ज्ञानी, बहुश्रुत, शीलवान, व्रतसम्पन्न, आर्य, तथा बुद्धिमान पुरुष का अनुगमन उसी प्रकार करें, जिस प्रकार चन्द्रमा नक्षत्र पक्ष का अनुगमन करता है। (२०७)

५४. जो शील और सम्यक् दृष्टि से सम्पन्न है, धर्म में स्थित है, सत्यवादी है, और अपने कार्यों को करने वाला है, उससे लोग प्रेम करते हैं। (२१७)

५५. अक्रोध से क्रोध को जीतें, असाधु को साधुता (भलाई) से जीतें, कन्जूस को दान से जीतें, और झूठ

बोलने वाले को सत्य से जीतें। (२३३)

५६. मानसिक दुराचार से बचें, मन से संयत रहें। मानसिक दुराचार को छोड़ मानसिक सदाचार का आचरण करें। (२३३)

५७. राग के समान आग नहीं, द्वेष के समान भूत नहीं, मोह के समान जाल नहीं, तृष्णा के समान नदी नहीं। (२५१)

५८. दूसरे का दोष देखना आसान है, किन्तु अपना दोष देखना कठिन है। वह दूसरों के दोषों को भूसे की भांति उड़ाता फिरता है, किन्तु अपने दोषों को वैसे ही ढकता है जैसे बहेलिया शाखाओं से अपने शरीर को। (२५२)

५९. जो सच्चे और झूठे दोनों का निर्णय विचारपूर्वक

धर्म से पक्षपात रहित होकर न्याय करता है, वही धर्म की रक्षा करने वाला सच्चा न्यायाधीश कहा जाता है। (२५७)

६०. वाणी का संयम करें, मन का संयम करें, और शरीर से कोई भी पाप न करें। इन तीनों कर्म पथों को शुद्ध करें। ऋषि के बताये मार्ग का अनुसरण करें। (२८१)

६१. योगाभ्यास से प्रज्ञा उत्पन्न होती है और उसके अभाव से उसका क्षय होता है। उन्नति और विनाश के इन दो भिन्न मार्गों को जानकर ऐसा करें जिससे प्रज्ञा की वृद्धि हो। (२८२)

६२. जो ध्यानी, निर्मल, आसनबद्ध, कृतकृत्य, पाप रहित है, जिसने निर्वाण को पा लिया है, उसे मैं

ब्राह्मण कहता हूँ। (२८६)

६३. सत्पुरुष दूर होने पर भी हिमालय पर्वत की भांति प्रकाशित होते हैं। असत्पुरूष पास में होने पर भी रात में फेंके गये बाण की भांति दिखलाई नहीं देते। (३०४)

६४. जैसे युद्ध में हाथी धनुष से फेंके हुए बाण को सहन करता है, वैसे ही मैं कटु वाक्यों को सहन करूँगा, क्योंकि संसार में दुःशील लोग ही अधिक हैं। (३२०)

६५. अप्रमाद में रत होओ, अपने चित्त की रक्षा करो। पंक में फँसे हाथी की तरह इस कठिन संसार से अपना उद्धार करो। (३२६)

६६. वृद्धावस्था तक शील का पालन सुखकर है, स्थिर श्रद्धा का होना सुखकर है, ज्ञान का लाभ करना

सुखकर है, तथा पापों का न करना सुखकर है। (३३३)

६७. प्रमत्त होकर आचरण करने वाले मनुष्य की तृष्णा मालुवा लता की तरह बढ़ती है। वन में फल की इच्छा से कूद-फाँद करने वाले बन्दर की तरह वह जन्म-जन्मान्तर में भटकता रहता है। (३३४)

६८. जो संसार में इस दुस्त्याज्य-नीच तृष्णा को जीत लेता है, उसके शोक उसी तरह गिर जाते हैं जैसे कमल के ऊपर से जल के बिन्दु। (३३६)

६९. धर्म का दान सारे दानों से बढ़कर है। धर्म का रस सारे रसों में प्रबल है। धर्म में रति (प्रेम) सब रतियों में बढ़कर है। तृष्णा का विनाश सारे दुखों को जीत लेता है। (३५४)

७०. संसार से पार होने की कोशिश न करने वाले

दुर्बुद्धि पुरुष को भोग नष्ट करते हैं। भोग की तृष्णा में पड़कर दुर्बुद्धि पराये की भांति अपना ही हनन करता है। (३५५)

यह छठी किरण सम्पूर्ण हुई।

सप्तमी किरण

रहनी का महत्व

श्रीमुखवाणी में आचरण से सम्बन्धित तीन मुख्य बातों पर प्रकाश डाला गया है– १. कौल (कथनी) २. फैल (करनी) ३. हाल (रहनी)। धर्म की बातें सुनने को लगभग प्रत्येक जगह मिल जाती हैं, किन्तु उस पर आचरण करने वाले (करनी) विरले ही होते हैं। आचरण करने वालों में भी उसमें पूर्ण रूप से स्थित हो जाने (रहनी) वाले विरले ही होते हैं।

ज्ञान (कथनी) की दृष्टि से रावण के सामने राम फीके हैं, किन्तु आचरण (रहनी) की दृष्टि से राम मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में सबके पूज्य बन गये और रावण राक्षस कहलाया जबकि वह ऋषिपुत्र भी था। इसी प्रकार

दुर्योधन और युधिष्ठिर दोनों ही वेद के स्नातक थे, किन्तु अपने बुरे कर्मों के कारण दुर्योधन सबकी निन्दा और घृणा का पात्र बना तथा महाभारत के विनाशकारी युद्ध का मूल कारण बना। इसके विपरीत युधिष्ठिर कथनी को करनी और रहनी में चरितार्थ करने के कारण धर्मराज कहलाये। ऐसी मान्यता प्रचलित है कि धर्म पर आरूढ़ होने के कारण महाभारत के युद्ध में उनका रथ जमीन से दो अँगुल ऊपर चला करता था। दुर्योधन अपनी आचरणहीनता को स्वयं अपने मुख से बखान करता है–

जानामि धर्मम् न च मे प्रवृत्तिः।

जानामि अधर्मम् न च मे निवृत्तिः।।

मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि धर्म क्या है, किन्तु उसमें मेरा मन नहीं लगता। मैं यह भी जानता हूँ कि

अधर्म क्या है, किन्तु उससे मेरा मन नहीं हटता।

यहाँ यह स्पष्ट है कि रावण और दुर्योधन केवल कथनी तक ही सीमित रहे, जबकि राम और युधिष्ठिर ने स्वयं को करनी और रहनी तक पहुँचाया। इसी कारण वे आज भी जन-जन के पूज्य हैं।

वर्तमान समय में वेदों की मार्मिक व्याख्या करने वाले हजारों विद्वान हैं, किन्तु उनमें कोई भी ऋषि दयानन्द जी जैसा नहीं है। ऋषि की शोभा प्राप्त करने के लिए ऋतम्भरा प्रज्ञा द्वारा समाधिस्थ होकर मन्त्रद्रष्टा होना पड़ेगा। "ऋषियो मन्त्र द्रष्टारः।" आचरण से हीन बौद्धिक ज्ञान तो केवल कण्ठ की ही शोभा है। उससे जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य नहीं पाया जा सकता।

इसी प्रकार आजकल श्रीमुखवाणी की चौपाइयों की

अति सुन्दर व्याख्या करने वाले तथा हजारों चौपाइयों को कण्ठस्थ करने वाले सैकड़ों विद्वान हैं। चर्चनी के ज्ञान द्वारा परमधाम की शोभा तथा लीला की गहन जानकारी रखने वाले हजारों सुन्दरसाथ हैं, किन्तु इनमें से किसी की भी तुलना पूज्य महाराज श्री गोपालमणि जी, श्री युगलदास जी, तथा श्री रामरतन जी जैसे परमहंसों के साथ नहीं की जा सकती। इन पूज्य परमहंसों ने श्रीमुखवाणी के ज्ञान को अपने आचरण में उतारा था, जबकि आज वह ज्ञान मात्र कहने-सुनने का ही विषय बना हुआ है। एक सन्त कवि का इस सम्बन्ध में कथन है-

कथनी मीठी खांड सी, करनी विष की लोय।
कथनी तजि करनी करे, विष से अमृत होय।।

यदि हमें अध्यात्म की सर्वोच्च मन्जिल प्राप्त करनी

है, तो हमें अपने को रहनी की कसौटी पर खरा सिद्ध करना पड़ेगा अर्थात् अपनी आत्मा को जाग्रति की स्थिति में ले चलना पड़ेगा, जिससे हमारे हृदय में युगल स्वरूप विराजमान हो जायें।

ऐसा आवत दिल हुकमें, यों इस्के आतम खड़ी होय।
हक सूरत दिल में चुभे, तब रूह जागी देखो सोए।

सिनगार ४/१

ज्ञान के द्वारा जो जागनी होती है, वह अधूरी जागनी होती है। जब तक वह ज्ञान आचरण में न उतरे अर्थात् ईमान पर खड़े होकर इश्क की दौड़ न लगायी जाये, तब तक हृदय में युगल स्वरूप के चरण कमल नहीं आ सकते। ऐसी स्थिति हुए बिना परमहंस अवस्था नहीं मानी जा सकती, भले ही कोई कितना ही पढ़ा–

लिखा क्यों न हो।

मारफत देवे हस्क, इस्के होवे दीदार।

इस्कें मिलिए हक सों, इस्कें खुले पट द्वार।।

सिनगार २५/८३

जब श्री मिहिरराज के अन्दर श्री युगल स्वरूप विराजमान हो गये, तो सारा आध्यात्मिक ज्ञान उनके अन्दर प्रकट हो गया। उन्हें अन्यों की तरह शब्दों को रटने की आवश्यकता नहीं पड़ी।

पढ़या नाहीं फारसी, ना कछु हरफ आरब।

सुन्या न कान कुरान को, और खोलत माएने सब।।

खुलासा १५/५

दुनिया के लाखों मौलवी-मुल्ला दिन-रात कुरआन

को रटते हैं, लेकिन कुरआन के मारफती गुझ अर्थों से वे पूर्णतया अनभिज्ञ रहते हैं, क्योंकि वे आध्यात्मिक रहनी की कसौटी पर अपने को पूर्ण रूप से खरा सिद्ध नहीं कर पाते। यही स्थिति पण्डितों, पादरियों, तथा बौद्ध भिक्षुकों की भी है। सारा संसार ही कथनी-सुननी के प्रवाह में बहा जा रहा है। शक्कर-शक्कर कहने से कभी भी मुख मीठा नहीं होगा।

हक खिलवत गाए से, जान्या हमको देसी जगाए।
इस्क पूरा आवसी, पर हके हांसी करी उलटाए।।

सिनगार २७/५५

परिकरमा, सागर, तथा सिनगार की वाणी कथनी की अपेक्षा करनी तथा रहनी के लिये है, अर्थात् इन तीनों ग्रन्थों के ज्ञान को केवल गाना नहीं है , बल्कि

चितवनि द्वारा २५ पक्षों एवं युगल स्वरूप की शोभा को अपने दिल में बसाना है। यह हमारी आध्यात्मिक रहनी है। सामाजिक एवं धार्मिक रहनी भी आध्यात्मिक रहनी की पूर्णता में समाहित हो जाती है। तीनों प्रकार की रहनी की महत्ता क्या है, यह श्रीमुखवाणी में इन शब्दों में प्रस्तुत है–

अब समया आया रेहेनीय का, रूह फैल को चाहे।
जो होवे असल अर्स की, सो फैल ले हाल देखाए।।

खिलवत ५/५

अब रहनी का समय आ गया है। अब आत्मा को केवल कहने–सुनने से सन्तोष नहीं है। जो परमधाम की ब्रह्मसृष्टि होगी, वह करनी के क्षेत्र में उतरेगी और उसकी पराकाष्ठा (अन्तिम स्थिति) रहनी में स्थित हो जायेगी।

केहेनी कही सब रात में, आया फैल हाल का रोज।

हक अर्स नजर में लेय के, उड़ाए देओ दुनी बोझ।।

खिलवत ५/६

ब्रह्मवाणी के अवतरण से पहले परब्रह्म के धाम, स्वरूप, तथा लीला की वास्तविक पहचान न हो पाने के कारण संसार के ज्ञानी एवं भक्तजन प्रियतम को रिझाने की केवल बातें भर करते रहे हैं। अब सभी के लिए यह सुनहरा अवसर है कि कथनी छोड़कर स्वयं को करनी और रहनी में डुबोयें। अब सारी दुनिया का भार अपने सिर पर ढोते रहने की जरूरत नहीं है, बल्कि अपने प्रियतम की छवि और परमधाम की शोभा को दिल में बसा लेना है।

जोस हाल और इश्क, ए आवे न फैल हाल बिन।
सो फैल हाल हक के, बिना बकसीस न पाया किन।।

खिलवत ५/१२

करनी और रहनी के क्षेत्र में उतरे बिना दिल में इश्क और रहनी का जोश नहीं आ सकता। इसके साथ ही धनी की मेहर के बिना करनी और रहनी में भी अपनी पैठ नहीं बनायी जा सकती।

कहे हुकम आगे रेहेनीय के, केहेनी कछुए नाहें।
जोस इस्क हक मिलावहीं, सो फैल हाल के माहें।।

खिलवत ५/१६

धनी का हुक्म कहता है कि रहनी के सामने कथनी का कोई भी महत्व नहीं है। जिस इश्क के जोश में प्रियतम का दीदार होता है, वह करनी और रहनी के

बिना किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं है।

अब आया बखत रेहेनीय का, रात मेट हुई फजर।
अब केहेनी रेहेनी हुआ चाहे, छोड़ दुनी ले अर्स नजर।।

खिलवत ५/४

अब ब्रह्मवाणी का अवतरण हो गया है, जिससे अज्ञानता की रात्रि समाप्त हो गयी है तथा ज्ञान का सवेरा हो गया है, इसलिए अब कहनी का नहीं बल्कि रहनी का समय है। अब सभी सुन्दरसाथ का यह नैतिक उत्तरदायित्व है कि दुनिया के सुखों की तृष्णा को छोड़ देवें तथा अपने दिल में अपने अखण्ड परमधाम की शोभा को बसा लेवें।

अज्ञानता की रात्रि में तो सारा संसार सो ही रहा है। परमधाम से अवतरित ब्रह्ममुनियों से तो यही आशा की

जाती है कि वे संसारी जीवों की राह पर न चलकर आत्म–जाग्रति की राह पर अपने कदम बढ़ायेंगे। इसके लिये सभी को चितवनि की राह अपनानी ही पड़ेगी। इसके बिना रहनी की मन्जिल अधूरी रह जायेगी।

जब हक चरन दिल दृढ़ धरे, तब रूह खड़ी हुई जान।
हक अंग सब हिरदे आए, तब रूह जागे अंग परवान।।

सिनगार ५/३७

जब श्री राज जी के चरण कमल आतम के दिल में उतर जाते हैं, तो रूह की भी प्रेम में अखण्ड स्थिति बन जाती है तथा उसे भी अपने उन अंगों का आभास होता है। श्री राज जी के सभी अंगों की शोभा जब दिल में आ जाती है, तो आत्मा का भी नख से सिख तक का श्रृंगार झलकने लगता है अर्थात् जाग्रत हो जाती है।

जब पूरन सरूप हक का, आए बैठा मांहे दिल।
तब सोई अंग आतम के, उठ खड़े सब मिल।।

सिनगार ५/७०

जब श्री राज जी के स्वरूप की सम्पूर्ण शोभा दिल में अखण्ड हो जाती है, तो वहदत के सिद्धान्त से आत्मा की भी सभी अंगों सहित शोभा झलकने लगती है, इसे ही आत्मा का फरामोशी से जागना कहते हैं, और जागनी ब्रह्माण्ड में यही सर्वोपरि लक्ष्य होना चाहिए।

हक के भूखन की क्यों कहूं, रंग नंग जोत सलूक।
आतम उठ खड़ी तब होवहीं, पेहेले जीव होए भूक भूक।।

सिनगार ५/६५

जब जीव धनी पर बलिहारी होता है, तभी वह विकारों से रहित होकर निर्मल हो पाता है। इसके पश्चात्

आत्मा प्रेम में डूबकर श्री राज जी के वस्त्र-आभूषणों सहित सम्पूर्ण शोभा को जब दिल में बसाती है, तो उसका भी नख से शिख तक सारा श्रृंगार खड़ा हो जाता है।

बस्तर भूखन हक के, आए हिरदे ज्यों कर।
त्यों सोभा सहित आतमा, उठ खडी हुई बराबर।।

सिनगार ५/६८

वस्त्राभूषणों सहित धनी की शोभा के दिल में अखण्ड होने पर आत्मा भी अपनी सम्पूर्ण शोभा सहित जाग्रत हो जाती है अर्थात् अपने निज स्वरूप को देखती है।

जब बैठे हक दिल में, तब रूह खड़ी हुई जान।
हक आए दिल अर्स में, रूह जागे के एही निसान।।

सिनगार ५/७२

आत्म-जाग्रति की पहचान यही है कि उसके हृदय में श्री राज जी के नख से शिख तक की सम्पूर्ण शोभा अखण्ड हो जाये।

इसी को कहते हैं "सेर भर सूत कातना"। मारफत की अवस्था में पहुँच जाने पर वह सवा सेर सूत कातने वाली स्थिति बन जाती है। लेकिन आज बहुत ही दुःखद स्थिति है। स्वयं सूत कातना तो दूर, कितने ही सुन्दरसाथ दूसरों का तकला तोड़ने में ही अपना गौरव समझे बैठे हैं। न तो उन्हें स्वयं सूत कातना है और न किसी को कातने देना है। न तो वे स्वयं चितवनि करते हैं और न किसी के करने से खुश होते हैं। इन्हीं के सम्बन्ध में प्रकास हिंदुस्तानी के कातनी के प्रकरण में कहा है-

एक तकला भाने ताओ में, फोकट फेरा खाए।
झगड़ा लगावे आप में, हिरदे रस ना जुबांए।।
एक झगड़ा लगावे और को, सामी तकले डाले वल।
ए बातें होसी वतन में, जब उतर जासी अमल।।
एक औरों को उलटावहीं, कहा विध होसी तिन।
कातना उन पीछा पड़्या, सामी धके दिए औरन।।
जो झगड़ा लगावे आप में, ताए होसी बड़ो पछताप।
ओ जाने कोई ना देखहीं, पर धनी बैठे देखे आप।।
हाथ घससी हाथ सों, जो लई इन्द्रियों घेर।
सो पछतासी आंखां खुले, पर ए समया न आवे फेर।।
जिन इत आंखां न खोलिया, करके बल बेसुमार।
नींद उड़ाए ना सकी, सो ले उठसी खुमार।।

प्रकास हिंदुस्तानी २५/२,४,५,६,१०,१२

धनी के चरण कमलों को हृदय में धारण कर लेने पर अन्दर के पर्दे खुल जाते हैं तथा युगल स्वरूप की शोभा दिल में अखण्ड हो जाती है।

फेर फेर चरन को निरखिये, रूह को एही लागी रट।

हक कदम हिरदे आए, तब खुल गये अन्तर पट।।

सिनगार ६/१

ए चरन मेहेर करत जिन ऊपर, देत हिरदे पूरन सरूप।

युगल किशोर चित चुभत, सुख सुन्दर रूप अनूप।।

सिनगार २१/२२७

धाम की धनी की शोभा को आत्मिक नेत्रों से देखने के लिए पूर्ण रूप से कुर्बान होना पड़ता है। यही हमारी

आध्यात्मिक रहनी है।

साथ जी सोभा देखिए, करे कुरबानी आतम।
वार डारों नख सिख लों, ऊपर धाम धनी खसम।।

किरंतन ९०/१

यह संसार आकाश के फूल, वन्ध्या के पुत्र, खरगोश के सींग, तथा मृगतृष्णा के जल के समान झूठा है। इसके सभी सुख क्षणिक है, शरीर को जीर्ण-शीर्ण करने वाले हैं, रोगों के कारण हैं, और ८४ लाख योनियों में घुमाने वाले हैं। ऐसे झूठे संसार में यदि हम स्वयं को रहनी की कसौटी पर खरा सिद्ध करके अपने धाम हृदय में धनी को बसा लें, तो हमारे लिए संसार रहते हुए भी नहीं रहेगा। हमें ऐसा प्रतीत होगा कि हम अपने धाम धनी के साथ परमधाम के पच्चीस पक्षों में विहार कर रहे हैं।

संसार में इससे बड़ा सुख और क्या हो सकता है।

इस संसार में रहकर परमधाम के जिन सुखों की अनुभूति होती है, उनके सामने करोड़ों वैकुण्ठ के सुखों का भी कोई महत्व नहीं है।

कई कोट राज बैकुण्ठ के, न आवे इत खिन के समान।

किरंतन ७८/२

ज्यों ज्यों होवे अर्स नजीक, खेल त्यों त्यों होवे दूर।

यों करते छूटया खेल नजरों, तो रूहें कदमै तले हजूर।।

सिनगार २४/१३

जैसे-जैसे हमारे दिल में परमधाम की शोभा बसती जायेगी, वैसे-वैसे संसार हमसे दूर होता जायेगा और आत्मा को यह अनुभूति होगी कि उसका मूल तन तो धनी के चरणों में विराजमान है।

नजर खेल से उतरती देखिये, त्यों अर्स नजीक नजर।
यों करते लैल मिटी रूहों, दिन हुआ अर्स फजर।।

सिनगार २४/१४

और जैसे-जैसे हमारी नजर इस झूठे खेल से हटती जायेगी, वैसे-वैसे हमारे दिल में परमधाम की शोभा बसती जायेगी। ऐसी स्थिति में आत्मा के लिए फरामोशी की कोई बात ही नहीं रहेगी, क्योंकि जब मारिफत के ज्ञान और हकीकत के इश्क का स्वरूप दिल में प्रकट हो जाता है, तो फ़ज़र (प्रातःकाल) का ही अहसास होता है।

कौल फैल आए हाल आइया, तब मौत आई तोहे।
तब रूह की नासिका को, आवेगी खुसबोए।।

सिनगार २५/६७

कथनी और करनी के बाद जब रहनी की स्थिति प्राप्त हो जाती है, तो मैं खुदी के सारे पर्दे हट जाने से जीते जी मरने वाली स्थिति हो जाती है। तब आत्मा के धाम हृदय में परमधाम की शोभा झलकने लगती है।

ए सहूर करो तुम मोमिनों, जब फैल से आया हाल।
तब रूह फरामोसी न रहे, बोए हाल में नूर जमाल।।

सिनगार २५/६९

अब समस्त सुन्दरसाथ के लिए यह आत्म-मन्थन की घड़ी है कि यदि उन्हें अपनी आत्मिक फरामोशी को दूर करके धनी का दीदार पाना है, तो कथनी से रहनी की अवस्था में आना ही पड़ेगा। इसके सिवाय अन्य कोई चारा नहीं है।

बेसक होए दीदार कर, ले जवाब होए बेसक।

एही मोमिनों मारफत, खिलवत कर साथ हक।।

सिनगार २५/७०

श्रीमुखवाणी का बेशक इल्म हमें पूर्ण रूप से संशय रहित कर देता है, जिसके कारण हम धनी का दीदार कर पाते हैं। सुन्दरसाथ के लिए मारिफत (विज्ञानमयी) की अवस्था वही मानी जायेगी, जिसमें आत्मा मूल मिलावा में पहुँचकर श्री राज जी की शोभा में एकरूप हो जाती है। यही रहनी की सर्वोच्च अवस्था है और जागनी ब्रह्माण्ड में आत्मा का सर्वोपरि लक्ष्य है।

मारफत लदुन्नी जिन लई, सो करे हक सहूर।

सहूर किए हाल आवहीं, सो हाल बीच हक हजूर।।

सिनगार २५/७०

जो सुन्दरसाथ तारतम वाणी का मारिफत का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, वही धाम धनी के चिन्तन में खुद को डुबो पाते हैं। तभी रहनी की वास्तविक स्थिति प्राप्त होने लगती है और धनी के दीदार का दरवाजा खुल जाता है।

ताथें हुकम के सिर दोस दे, बैठ न सके मोमिन।
अर्स दिल खुदी से क्यों डरे, लिए हक इलम रोसन।।

सिनगार २७/१९

इसलिये जो भी परमधाम का सच्चा सुन्दरसाथ होगा, वह धनी के हुक्म के बहाने चितवनि से कदापि दूर नहीं होगा। यह शाश्वत सिद्धान्त है कि ध्येय के गुण ध्याता में अवश्य आते हैं। जो भी सुन्दरसाथ युगल स्वरूप की छवि को अपने दिल में चितवनि द्वारा बसायेगा, यह निश्चित है कि वह विषय-विकारों से

पूर्णतया दूर होकर रहनी में आ जायेगा और धाम धनी का दीदार कर लेगा। जिन सुन्दरसाथ का हृदय ब्रह्मवाणी के ज्ञान से प्रकाशित है और अर्श की शोभा पा चुका है, भला वे सुन्दरसाथ मैं खुदी के बन्धन से क्यों डरेंगे?

जो होए आवे मोमिन रूह से, सो कबूं ना और सों होए।
इत चली जो रूह जगाए के, सो सोभा लेवे ठौर दोए।।

छोटा कयामतनामा १/४४

अध्यात्म जगत के जिन महान कार्यों को ब्रह्मसृष्टि कर सकती है, वह जीव सृष्टि और ईश्वरीय सृष्टि से कदापि नहीं हो सकता। जो आत्मा यहाँ अपने को रहनी में लाकर जाग्रत कर लेती है, वह यहाँ तो धन्य-धन्य होगी ही, परमधाम में भी सबके सम्मुख धन्य-धन्य होगी।

केहेनी सुननी गई रात में, आया रेहेनी का दिन।

बिन रेहेनी केहेनी कछुए नहीं, होए जाहेर बका अर्स तन।।

छोटा कयामतनामा १/५६

जब ब्रह्मवाणी के अवतरण से अखण्ड परमधाम तथा श्री राजश्यामा जी एवं ब्रह्मसृष्टियों का स्वरूप जाहिर हो गया है, तो अब केवल अपने को रहनी में ही ढालने का समय है। ब्रह्मज्ञान को केवल कह-सुनकर सन्तोष कर लेने की बातें बीते दिनों की हैं। आज के युग में बिना रहनी के कथनी की बातें निरर्थक हैं।

केहेनी करनी चलनी, ए होएं जुदियां तीन।

जुदी क्या जाने दुनी कुफर की, और ए तो इलम आकीन।।

छोटा कयामतनामा १/५७

कथनी, करनी, और रहनी तीनों अलग-अलग हैं।

माया से उत्पन्न हुई जीव सृष्टि इनके अलग-अलग भेद नहीं समझ पाती। वह तो केवल श्रीमुखवाणी के शब्दजाल में उलझकर स्वयं को चितवनि से अलग कर लेती है, जिसके कारण उसका दिल अर्श की शोभा नहीं ले पाता। ब्रह्मसृष्टि का दिल हकीकत और मारिफत के इल्म से भरा होने के कारण पूर्ण ईमान वाला होता है, जिसमें इश्क की रसधार बहती रहती है और पल-पल धनी के सुख की लज्जत मिलती रहती है।

जो जाग उठ बैठा हुआ, जगाया हक इलम।
सो हादी बिना एक पल ना रहे, छोड़ न सके कदम।।

छोटा कयामतनामा १/७६

जो ब्रह्मवाणी द्वारा जाग्रत हो गया है, वह एक पल भी अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी के बिना

नहीं रह सकता।

अर्धांगिनी आत्मा की वास्तविक रहनी तो यही है कि उसका एक पल भी प्रियतम के बिना न बीते। माया इस लक्ष्य में बाधक है। माया के सभी हथियारों को नष्ट करने के लिये प्रेम ही अचूक ब्रह्मास्त्र है–

प्रेम खोल देवे सब द्वार, पारै के पार जो पार।
प्रेम धाम धनी को विचार, प्रेम सब अंगों सिरदार।।
जब प्रेम हुआ झकझोल, तब अन्तर पट दिए खोल।
जब चढ़े प्रेम के पुंज, निज नजरों आया निकुंज।।

परिकरमा १/६२,६४

हमें इस खेल में आये ४०० वर्ष से अधिक हो गये हैं। हमारा जीव इस सृष्टि में लाखों जन्मों से न जाने कितनी योनियों में भटकता आ रहा है। हमारी आत्मा ने

भी अब तक न जाने कितने तनों को बदला होगा। धनी की असीम कृपा से हमें ब्रह्मवाणी मिली है, जिसके द्वारा हमें निज स्वरूप का बोध हुआ है। क्या हमारी अन्तरात्मा को यह सहन है कि माया में भटकने की यह श्रृंखला ऐसे ही चलती रहे? क्या हम इस दुनिया में ब्रह्मसृष्टि कहलाने के गौरव को कलंकित करना चाहते हैं? क्या परमधाम में जाग्रत होने पर सबकी हँसी के पात्र बनना चाहते हैं? यदि नहीं, तो रहनी की सर्वोच्च स्थिति को प्राप्त करने के लिये हमें कमर कसकर तैयार रहना होगा और श्रीमुखवाणी के इन शब्दों को अपने जीवन में आत्मसात् करना होगा–

सूता होए सो जागियो, जागा बैठा होए।

बैठा ठाढ़ा होइयो, ठाढ़ा पाऊं भरे आगे सोए।।

किरंतन ८६/१८

इसके साथ ही यह ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ।